नई नज़र का सफ़र

शौनक जैन

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS
India | U.K.

Copyright © Rounak Jain 2026

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

For permissions requests or inquiries regarding this publication,
please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-81-69761-71-0

Cover Design: Deepak Katheria
Typesetting: Manisha Rawat

First Edition: September 2026

भूमिका

"नई नजर का सफर" एक ऐसी परिकल्पना है, जो सभी उम्र के पाठकों को अपने आप से जुड़ने के लिए प्रेरित करे। मेरा व्यक्तिगत रूप से ऐसा दृढ़ विश्वास है कि "नई नजर का सफर" एक 'solution key', यानी समाधान रूपी चाबी की कुंजी है। इसमें जरूरी नहीं है कि हर व्यक्ति की हर समस्या रूपी ताले में सारी चाबियां लगें, किंतु इस "नई नजर के सफर" को करने से कोई न कोई, एक न एक चाबी आपको ऐसी जरूर मिलेगी, जो आपके किसी न किसी समस्या के ताले को खोल दे।

"नई नजर का सफर" हर उस व्यक्ति को समर्पित है, जो इस दुनिया को, अपने जीवन को एक बेहतर और सुंदर रूप में अनुभव करना चाहते हैं या उत्साह एवं खुशी का साक्षात्कार करना चाहते हैं। इस किताब के माध्यम से आप जान सकेंगे कि हम अपनी रोजमर्रा की जिंदगी में, जरूरी नहीं कि कोई बड़ा बदलाव करें, बल्कि कुछ छोटे-छोटे बदलाव करते जाएं, परिस्थितियों को, दृश्यों को थोड़े अलग दृष्टिकोण से देखें, तो हमें अवश्य ही एक सुखद, आनंदमय, शांतिपूर्ण समाधान या अनुभव प्राप्त होगा।

इस किताब का मुख्य व सबसे महत्वपूर्ण प्रयोजन यही है कि हम जीवन के छोटे-मोटे धक्कों से विचलित न हों और साथ ही साथ बड़ी परीक्षाओं के समय भी साहसपूर्वक, बेहद समझदारी से, परिस्थितियों के अनुसार कार्य कर सकें। हमारी एक छोटी-सी सही सोच, बड़ी-से-बड़ी समस्या को भी चुटकियों में हल करने की क्षमता रखती है। एक बार हमारे विचार सुधरने लग जाएं, तो हमारी क्रियाओं में भी सूझबूझ नजर आने लगेगी।

अतः बड़े ही आशापूर्वक, आनंदपूर्वक, उत्साहपूर्वक एवं कृतज्ञतापूर्वक, उन सभी मित्रों के लिए, जो हर दिन थोड़ा और बेहतर बनने का प्रयास करना चाहते हैं और इस सफर के संगी बन रहे हैं, यह किताब "नई नजर का सफर" आप सभी के लिए उपलब्ध है!

धन्यवाद!

आभार

सर्वप्रथम पंच परमेष्ठी को विनयपूर्वक नमन करता हूं, जिनकी कृपा से इस "नई नजर का सफर" की कल्पना को एक वास्तविक आकार देने की ऊर्जा प्राप्त हुई।

मैं विशेष रूप से अपनी प्रिय एवं आदरणीय बड़ी बहन रानी (तुलिका) का हृदय से आभार व्यक्त करता हूं, जिनके अटूट विश्वास, स्नेह, प्रेरणा और सहयोग के बिना इस पुस्तक को अपने वर्तमान स्वरूप तक पहुंचाना संभव नहीं था। उनके प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूं। एवं मैं अपनी माताजी का विशेष ऋणी हूं तथा समस्त स्नेहीजनों का भी समान रूप से आभारी हूं।

मैं सभी बड़ों को भी धन्यवाद ज्ञापित करता हूं, जिनसे कभी न कभी मैंने सुना, पढ़ा या कुछ न कुछ सीखा है, क्योंकि इस किताब की कई कहानियां, किस्से एवं कुछ दृष्टांत मेरे नहीं, अपितु उन ज्ञानी जनों की रचनाएं हैं। अतः मैं उनके आशीर्वाद से जो सुना, पढ़ा और समझा, उसे आप सभी के समक्ष व्यक्त करने का प्रयास कर रहा हूं।

इस माध्यम से, अगर किसी भी रूप में, किसी भी प्रकार से, ज्ञानी जनों का मेरे द्वारा भूलवश अथवा अज्ञानतावश अनादर हुआ हो, तो मैं हृदय के अंतरंग से क्षमा प्रार्थी हूं।

अंत में, मैं सभी पाठकों का भी आभार मानता हूं एवं ऐसा विश्वास रखता हूं कि मेरे ये अनुभव आप सभी के जीवन को, आपके व्यक्तित्व को और भी अधिक प्रभावशाली बनाने में सहयोगी होंगे तथा "नई नजर का सफर" पुस्तक सफलताओं के नए आयाम स्थापित करेगी।

मनुष्य होने के नाते गलतियां होना स्वाभाविक है। अतः मुझसे या प्रकाशन से जुड़े किसी भी व्यक्ति से हुई त्रुटि के लिए मैं पूर्व में ही क्षमा याचना करता हूं। आशा है कि आपके बड़प्पन से हमें आप सभी का स्नेह प्राप्त होगा।

अनुक्रमणिका

1. आँखों के आगे - नज़र के नज़ारे	1
2. बंधे एक डोर से	31
3. आज, अभी, यहीं	41
4. खुली आँखों के सपने	54
5. खुद से बड़ी परछाई	74
6. दो भाई दोनों तबाही	94

1.
आँखों के आगे - नज़र के नज़ारे

इस जगत में आपको दो चीज मिलेगी अच्छी या बुरी, पॉजिटिव या नेगेटिव - अब यह हमारे हाथ में होता है कि हम किसे चुनते हैं। बुरे विचार बुरी चीज़ एक कोरे कागज पर काले बिंदु के समान या एक सफेद उजली चादर पर काले दाग के समान होते हैं, यह हमारे ध्यान को ज्यादा आकर्षित करते हैं, हम यह नहीं देखते कि चादर कितनी नई है या कागज कितना साफ है हमारा ध्यान सबसे पहले उस काले दाग पर या किसी की कमी पर ही जाएगा।

त्रिखण्डाधिपति श्री कृष्ण वासुदेव; उनमें ऐसे तो कई गुण विद्यमान थे, पर एक गुण विशेष रूप से रहा हुआ था जो हमें अवश्य सीखना चाहिए - वह है "गुण दृष्टा" श्री कृष्ण हर किसी की केवल अच्छाई देखते थे, अच्छी बातों पर ध्यान देते थे, वह बुराई में भी अच्छाई खोजने का प्रयास करते थे, एक बार देवलोक में इंद्र द्वारा श्री कृष्ण की प्रशंसा की गई कि श्री कृष्ण जैसा गुण दृष्टा इस संपूर्ण सृष्टि में कोई भी नहीं! तब एक देव को उनसे ईर्ष्या हुई कि कोई मनुष्य इतना अधिक गुणवान कैसे हो सकता है कि स्वयं देवराज इंद्र को भी उसकी प्रशंसा करनी पड़े?

तब वह देव श्री कृष्ण की परीक्षा लेने के लिए धरती पर आया, उस देव ने एक कुत्तिया का रूप बनाया जिसका शरीर सड़ रहा हो, गल रहा हो, जिसके शरीर से बड़ी भयानक दुर्गंध आ रही हो, ऐसा कुरूप बनाकर वहां चला गया जहां से श्री कृष्ण की शाही सवारी निकल रही थी और राजमार्ग पर जाकर लेट गया सभी शाही सवारी में शामिल लोग नाक ढंकने लगे, मुंह बनाने लगे - 'छी! कितनी गंदी बदबू आ रही है, 'ये दुर्गंध तो सहन ही नहीं होती!' किंतु उस वक्त श्री कृष्णा अकेले थे जो उस कुत्तिया को निहारने लगे और बोले कि- ज़रा देखो इसके दांत कितने सुंदर हैं मानो मोतियों की तरह चमक रहे हों! जो वास्तव में देव ने एक मात्र खूबी अपने रूप में अपनी माया से रची थी- श्री कृष्ण की परीक्षा करने के लिए।

ऐसे वक्त में जब हर कोई केवल उस दुर्गंध से परेशान था, कुत्तिया का कुरूप देखकर हर कोई मुंह बना रहा था, तब श्री कृष्ण ने उन तमाम अवगुणों की उपेक्षा कर केवल उसके दांतों की रचना को सराहा केवल उनकी खूबसूरती पर ध्यान दिया।

**"नकारात्मक बादलों की तरह होनी चाहिए - आते जाते रहे,
सकारात्मकता आसमान की तरह होनी चाहिए - सदा के लिये!"**

इस दुनिया में चार प्रकार के लोग होते हैं

1. जो अच्छाई में अच्छाई देखें।
2. जो अच्छाई में बुराई देखें।
3. जो बुराई में अच्छाई देखें।
4. जो बुराई में बुराई देखें।

बुराई तो हम सबके भीतर होती है, हम ईश्वर की तरह परम पावन निर्मल तो नहीं, पर दूसरों में जो अच्छाई है उन्हें खोजने का प्रयास तो अवश्य ही कर सकते हैं!

हम सारी बातों में तुलना करते हैं - 'इसके पास कार है, तो मेरे पास भी होनी चाहिए।', 'इसके पास ऐसा घर है, तो मेरे पास इससे अच्छा घर होना चाहिए।', तो इस विषय में भी हमें तुलना करनी चाहिए कि अगर यह किसी की अच्छाई ढूंढ सकता है तो मैं क्यों नहीं ढूंढ सकता? अगर यह सामने वाले की तारीफ कर सकता है, तो मैं किसी की तारीफ क्यों नहीं कर सकता? अगर यह अच्छे कार्य कर सकता है तो मैं अच्छे कार्य क्यों नहीं करूं?

ऐसे विषयों में हमें अवश्य तुलना करनी चाहिए। इस तरह की तुलना हमारे भीतर के अवगुणों को नष्ट करके विनम्रता जैसे गुणों को प्रकट करेगी।

कोई व्यक्ति ऐसा नहीं है जो केवल और केवल अवगुणों से भरा हो, हर किसी में कोई ना कोई गुण अवश्य होता है, हमें केवल खोजना आना चाहिए एवं ग्रहण करने के भाव होने चाहिए।

मान लीजिए कि किसी व्यक्ति में मात्र एक खास गुण है बाकी अवगुण हालांकि, ऐसा होना थोड़ा मुश्किल है फिर भी ऐसी स्थिति में उस एक गुण की प्रशंसा अवश्य करें, अनुमोदना करें हो सकता है कि हमारे प्रोत्साहन की वजह से उसमें और कई ऐसे गुण विकसित हों और साथ ही हमारा तो फायदा

ही है कि सामने वाले के गुणों को देख कर हमारी दृष्टि तो निर्मल बन ही रही है।

हमें इस सृष्टि के समस्त जीवों से कोई ना कोई गुण अवश्य सीखना चाहिए, यहां तक की एक चींटी भी हमें अनुशासन सिखाती है - चीटियां हमेशा एक कतार में कतारबद्ध होकर चलती है, मौसम बदलने से पहले कितनी मेहनत करती हैं ये हम सब जानते हैं, अगर चींटी भी हमें अनुशासन जैसे महत्वपूर्ण गुण सिखा सकती है तो हमारे आसपास रहे हुए लोग तथा जीव जंतु क्या कुछ नहीं सिखा सकते? बस उस तरह की दृष्टि होनी चाहिए और गुण ग्रहण करने के भाव होनी चाहिए।

एक बार कुछ लोग सिगरेट पी रहे थे और प्रभु भजन कर रहे थे, भगवान का नाम ले रहे थे। वहां से दो व्यक्ति गुजरे, पहले व्यक्ति ने कहा- 'कि देखो कैसे घटिया लोग हैं भगवान का नाम लेते-लेते भी सिगरेट पी रहे हैं' वहीं उसके साथ जो दूसरा व्यक्ति था उसने कहा कि ' वाह! देखो कितने अच्छे लोग हैं सिगरेट पीते पीते भी भगवान का नाम ले रहे हैं।' फर्क बस इतना ही है, क्रिया एक ही हो रही है पर देखने का नजरिया अलग अलग है। दूसरों का गुण देखने के लिए सबसे ज्यादा आवश्यक होती है।

' गुणानुरागीता ' अर्थात क्या हमें गुणों से लगाव है? क्या गुणों के प्रति हमें अहोभाव है? अगर हमें कोई कहे कि क्रिकेट का मैच देखिए - जब तक मुझे क्रिकेट के खेल में रुचि पैदा नहीं होगी तब तक मुझे क्रिकेट देखने का भी मन नहीं होगा। इस प्रकार जब तक गुणों के प्रति लगाव उत्पन्न नहीं होगा, तब तक हम सामने वाले के गुण नहीं देख सकेंगे।

“सकारात्मक सोच का मतलब problems ignore करना नहीं — बल्कि solutions पर focus करना है!”

जिस प्रकार खाना बनाने के लिए स्वाद की पहचान होना आवश्यक है, इस प्रकार गुणों को ग्रहण करने के लिए सर्वप्रथम गुणानुरागीता आवश्यक है। अगर अभी तक हम दूसरों के गुण नहीं देख पा रहे हैं तो अभी तक हम में गुणानुरागीता पैदा नहीं हुई है।

शायद अभी तक हमारे अंदर दूसरों के गुणों को देखने की कला की कमी है। वस्तु, व्यक्ति की उपयोगिता का ज्ञान तब ही होता है जब वह दूर हो जाते

हैं, जब तक सब आसानी से उपलब्ध होता है तब तक हम उनके गुणों को गौण कर देते हैं, उन्हें इग्नोर कर देते हैं।

हमारी बात चल रही थी नजरिये नजरिये का फर्क होता है, जैसे किसी को अभी भी गुलाब में कांटे दिखते होंगे, तो किसी को कांटो के बीच में गुलाब दिखता होगा! किसी को दो अंधेरी रातों के बीच एक छोटा सा दिन दिखेगा, तो किसी को दो सुनहरे दिवसों के बीच एक छोटी सी रात किसी को कृष्ण भी काले नजर आएंगे, तो किसी को काले में भी कृष्णा नजर आएंगे! प्रत्येक विषय के हमेशा दो पक्ष होते हैं, सत्ता हमारे हाथ में है कि हम किसे चुनते हैं। नजरिया सही रखेंगे तो ज़ाहिर सी बात है, हमें दुनिया भी सही नजर आएगी।

हमें सबकी काबिलियत पर ध्यान देना चाहिए चाहिए क्योंकि अवगुण तो हमारे भीतर भी है। संसार में कोई व्यक्ति बिना काबिलियत के महान नहीं बनता, लेकिन अगर हममें गुणानुरागिता नहीं है तो हम कहते रहेंगे कि ' ये क्या, इसे तो कुछ भी नहीं आता फालतू ही लोग इसे भाव देते हैं, जबरदस्ती इसे सर पर चढ़ा रखा है।' लेकिन असल में लोग उसे इतना क्यों चाहते हैं, हम ये जानने, सुनने, समझने का भी प्रयास नहीं करेंगे।

एक बार एक दूध बेचने वाला दूध में पानी मिला रहा था। उसे ऐसा करते दो व्यक्तियों ने देखा।

"अंधेरे को कोसने से अच्छा है एक दीया जलाओ!"

पहले व्यक्ति ने कहा, "कितना लालची, धोखेबाज आदमी है। मिलावट का धंधा करता है।"

वहीं दूसरे ने देखा और कहा, "वाकई आज भी इंसानियत जिंदा है। कितना सज्जन आदमी है! बेचने से पहले दूध भी धोकर बेच रहा है।"

एक नजर में शायद हमें दूसरा वाला व्यक्ति नासमझ या बेवकूफ लग सकता है; किंतु यदि थोड़ा-सा ध्यान दिया जाए, तो उसका दृष्टिकोण कितना सुंदर है।

कितनी सरलता से उसने पूरी घटना में से जो एकमात्र ग्रहण करने योग्य बात थी, उसी पर ध्यान दिया, उसे ग्रहण किया और बाकी चीजों को छोड़ दिया।

वहीं हम अक्सर पहले व्यक्ति के समान किसी भी घटनाक्रम में से एक ऐसा आशय पकड़ लेते हैं, जो कमजोर होता है।

कहानी का जो भाग कमजोर होता है, उस पर टिप्पणियां करना हमें बेहद पसंद होता है। हम उसे तुरंत पकड़ लेते हैं।

यह किसी की कमजोरी देखने की सोच, सामने वाले का हित करे या अहित, वह तो दूर की बात है; किंतु हमारी शांति और अशांति का कारण अवश्य बन जाती है।

हमारे सामने उपस्थित घटनाओं में सदा दो प्रकार के दृश्य अवश्य मिलेंगे।

एक वह, जिसमें हमें दोष, कमी, नकारात्मकता और शिकायत दिखाई दे; और दूसरा वह, जिसमें हमें सीख, अच्छाई, संभावना और सकारात्मकता दिखाई दे।

लेकिन फिर भी, अंततः निर्णय हमारे हाथ में होता है कि हम किस पक्ष को चुनते हैं।

हम यह तय करते हैं कि हमें कांटे गिनने हैं या फूलों की खुशबू महसूस करनी है; हमें अंधकार पर ध्यान देना है या दीपक की रोशनी पर।

दुनिया में अच्छाई और बुराई दोनों साथ-साथ मौजूद हैं। प्रश्न यह नहीं है कि हमारे सामने क्या है, बल्कि यह है कि हमारी दृष्टि किस पर ठहरती है।

क्योंकि अक्सर परिस्थितियां नहीं, बल्कि उन्हें देखने का हमारा नजरिया ही हमारी शांति और प्रसन्नता का निर्धारण करता है।

अगर हमें बाहर घट रही घटनाओं का प्रभाव समझना हो, तो दो काम किए जा सकते हैं।

पहला तो यह कि हम बाहरी घटनाओं से पूरी तरह अप्रभावित रहें। बाहर क्या हो रहा है, कौन क्या कर रहा है, क्यों कर रहा है — इन सबसे पृथक रहें, शांत रहें।

कोई कुछ भी करे, उससे हमें क्या? मुझे केवल अपने मन की शांति के बारे में सोचना है; क्योंकि शांत और प्रशांत व्यक्ति ही आसपास के लोगों को भी शांत करने की क्षमता रखता है। जो स्वयं ही अशांत है, वह दूसरों को क्या ही शांत कर सकेगा?

हमेशा याद रखें कि परिवर्तन की शुरुआत स्वयं से ही होती है। जो व्यक्ति स्वयं अशांत होता है, वह दूसरों को भी अशांत ही करता है। प्रयास करना चाहिए कि यदि विपरीत परिस्थिति भी आए, या कोई प्रतिकूल घटना भी घटे, तो उसे एक मुस्कान दीजिए और आगे बढ़ जाइए।

यह सोचकर कि इससे भी कई अधिक महत्वपूर्ण कार्य हमारी वेटिंग लिस्ट में पड़े हैं।

दूसरा उपाय यह है कि बाहरी घटनाओं में से जो ग्रहण करने योग्य है, उसे हम ग्रहण करें और बाकी को छोड़ दें।

जिस प्रकार हम आम खाते हैं, तो आम का गूदा खा लेते हैं और गुठली फेंक देते हैं; या जिस प्रकार हम सीताफल अथवा कोई भी फल खाते हैं, तो उपयोगी वस्तु ग्रहण करते हैं और जो शेष अनुपयोगी भाग होता है, उसे छोड़ देते हैं।

ठीक उसी प्रकार, जीवन की घटनाओं से भी हमें जो शिक्षाएं भविष्य के लिए ग्रहण करनी हों, उन्हें ग्रहण करना चाहिए और बाकी सब छोड़ देना चाहिए। हर घटना में कुछ-न-कुछ सीख अवश्य छिपी होती है। बुद्धिमानी इस बात में नहीं है कि हम हर घटना को अपने मन पर बोझ बना लें, बल्कि इस बात में है कि हम उससे आवश्यक सीख लेकर आगे बढ़ जाएं।

"सफलता अनुभव से आती है, और अनुभव हमेशा खराब अनुभवों से ही मिलता है।" - ए.पी.जे. अब्दुल कलाम

क्योंकि जो व्यक्ति हर बात को पकड़कर बैठ जाता है, वह स्वयं को भारी बना लेता है; और जो व्यक्ति सीख को ग्रहण कर शेष को छोड़ देता है, वह हल्का, शांत और प्रसन्न बना रहता है।

अतः जीवन में यह विवेक विकसित करना अत्यंत आवश्यक है कि क्या अपने भीतर रखना है और क्या छोड़ देना है। कई बार हमारी शांति इस बात पर निर्भर नहीं करती कि हमारे आसपास क्या घट रहा है, बल्कि इस बात पर निर्भर करती है कि हम उसमें से क्या ग्रहण कर रहे हैं।

कोई बच्चा जब से पैदा होता है, तब से अनुभव इकट्ठे करना शुरू कर देता है। जब कभी कोई काम करने पर बच्चों को माता-पिता द्वारा डांट पड़ती है,

तो वह समझ जाता है कि यह गलत है, मुझे यह नहीं करना है; मुझे इसे करने से मना किया जा रहा है।

कुछ समय बाद यदि वह उसी कार्य को दोहराने लगे, तो उसके दिमाग में तुरंत एक बात क्लिक करती है कि, "मुझे यह काम नहीं करना है, क्योंकि अगर किया तो डांट पड़ेगी।"

इसी प्रकार हमें भी जीवन की हर घटना से कुछ-न-कुछ सीखने का प्रयास करना चाहिए।

हर घटना से, हर प्रशंसा से, हर अपमान से, हर सफलता से और हर विफलता से अनुभव इकट्ठे करना चाहिए।

अच्छे को भी महसूस कीजिए और बुरे को भी।

फिर जो बात आनंद दे, जो ग्रहण करने योग्य लगे, उसे ग्रहण कर लीजिए; और जो अनुपयोगी लगे, उसे नजरअंदाज कर दीजिए। जो छोड़ने योग्य हो, उसका त्याग कर दीजिए।

हमारे बड़े-बुजुर्गों के पास लगभग हर विषय से संबंधित जानकारी होती है। क्यों?

क्योंकि उनके पास अनुभवों का विशाल भंडार होता है।

उन्होंने जीवन की अनेक परिस्थितियों को देखा, समझा और जिया होता है।

जब तक हम किसी चीज को, समय को, स्थिति को, व्यक्ति को या व्यवहार को स्वयं अनुभव नहीं करते, तब तक उसकी वास्तविकता को पूरी तरह नहीं समझ पाते।

पुस्तकों से हमें ज्ञान मिल सकता है, लेकिन अनुभव हमें समझ देता है।

ज्ञान यह बताता है कि क्या सही है और क्या गलत; जबकि अनुभव यह सिखाता है कि सही और गलत का प्रभाव वास्तव में कैसा होता है।

इसलिए जीवन में घटने वाली प्रत्येक घटना को केवल घटना समझकर न जाने दें, बल्कि उसे एक अनुभव की तरह स्वीकार करें।

क्योंकि अनुभव ही वह शिक्षक है, जो बिना बोले भी बहुत कुछ सिखा देता है; और यही अनुभव धीरे-धीरे हमारे व्यक्तित्व, हमारी समझ और हमारे निर्णयों को परिपक्व बनाते हैं।

देखा जाए, तो कदम-कदम पर ऑक्सीजन की तरह ही हमें अनुभव करने के लिए परिस्थितियां, स्थान, लोग — सब उपलब्ध होते हैं।

बस यह हम पर निर्भर करता है कि हम क्या, किसे और कैसा अनुभव करते हैं।

एक व्यक्ति विश्व-भ्रमण करके वापस आया। उससे पूछा गया —"आप पूरी दुनिया घूमकर आए हैं। पूरी दुनिया में आपको सबसे अच्छा क्या लगा?"

उसने जवाब दिया, "इतना सब घूमने के बाद मुझे तो हर जगह का लैंडस्केप लगभग एक जैसा ही लगता है; पर मुझे जो सबसे अच्छा लगता है, वह है नए-नए लोगों से मिलना, अलग-अलग लोगों से बात करना और उनसे अनुभव लेना।"

किसी चिंतक ने कहा है —

"अगर मैं किसी से मिलता हूं, तो कुछ-न-कुछ नया सीखता हूं। और अगर किसी से मिलने पर मैं कुछ नहीं सीख पाया, तो मुझे लगता है कि मैंने अपना समय व्यर्थ कर दिया।"

**"बारिश सबके ऊपर बरसती है — कुछ लोग भीगते हैं,
कुछ नाचते हैं। चुनाव हमारा है!"**

वास्तव में, हर व्यक्ति अपने भीतर एक अलग कहानी, एक अलग अनुभव और एक अलग दृष्टिकोण लेकर चलता है।

इसलिए प्रत्येक मुलाकात हमें कुछ-न-कुछ सिखा सकती है, बशर्ते हम सीखने के लिए तैयार हों।

हमें अपने अच्छे और बुरे, दोनों प्रकार के अनुभवों से अपने व्यक्तित्व को विशाल बनाना चाहिए।

अच्छे अनुभव हमें प्रेरणा देते हैं और बुरे अनुभव हमें सावधानी सिखाते हैं।

दोनों ही हमारे विकास के लिए आवश्यक हैं।

किसी विचारक ने कहा है —

"अपने किरदार को इतनी शिद्दत से निभाइए कि परदा गिरने के बाद भी तालियां बजती रहें।"

अर्थात् जीवन ऐसा जिएं कि आपके कर्म, आपका व्यवहार और आपका व्यक्तित्व लोगों के मन में एक सकारात्मक छाप छोड़ जाए।

क्योंकि अंततः जीवन की लंबाई नहीं, बल्कि जीवन से प्राप्त अनुभव और उन अनुभवों से विकसित हुआ व्यक्तित्व ही व्यक्ति की वास्तविक पहचान बनता है।

"जीवन की यात्रा कुछ ऐसी होनी चाहिए कि आपके अंदर से शुरू हो और लोगों के दिलों में खत्म हो।"

वास्तव में, यदि जीवन की कोई सबसे बड़ी पूंजी है, तो वह है — हमारा व्यक्तित्व, हमारी छवि और हमारे भीतर के गुण।

ये गुण केवल बताने से नहीं, बल्कि हमारी हरकतों से, किसी भी वस्तु, विषय या परिस्थिति में हमारी परिपक्वता से और हमारी सोच से स्वतः ही झलकते हैं।

कहने का अर्थ केवल इतना है कि लोगों की हमारे बारे में क्या धारणाएं हैं, यह कतई महत्वपूर्ण नहीं है।

वह उनकी सोच है। उन्हें भगवान ने सोचने-समझने की बुद्धि दी है। अपने आसपास के वातावरण के बारे में सोचना, समझना और उसके आधार पर अपनी धारणा बनाना उनका अधिकार है।

और हम उनके इस अधिकार को कैसे छीन सकते हैं?

यह तो हमारे हाथ की बात ही नहीं है।

कई बार हम मायूस हो जाते हैं और सोचते हैं —

"मैं इतना अच्छा काम करता हूं, फिर भी मुझे कोई अच्छा नहीं कहता!"
"बुरा भी नहीं कहते, पर शाबाशी भी नहीं देते।"
"क्या फायदा है ऐसी भलाई करके?"

ऐसे समय में हमें यह सोचना चाहिए कि यदि कोई हमारी प्रशंसा नहीं कर पाया, तो यह उसकी सीमा हो सकती है; पर मेरी विशेषता तो वही है जो मेरे भीतर है।

मेरी अच्छाई, मेरी सच्चाई और मेरी भलाई ही मेरी वास्तविक ताकत हैं।

फिर मैं इन पर संदेह क्यों करूं?

इन सभी का लाभ अवश्य मिलता है, किंतु हर लाभ तुरंत दिखाई नहीं देता।

कुछ लाभ समय आने पर समझ आते हैं, कुछ लोगों के व्यवहार में दिखाई देते हैं और कुछ हमारे अपने मन की शांति के रूप में लौटते हैं।

इसलिए हमें लोगों की प्रतिक्रिया की चिंता करने की बजाय इस बात पर चिंतन करना चाहिए कि जो मेरे हाथ में है — मेरा व्यक्तित्व, मेरा आचरण और मेरी छवि — मैं उसे और अधिक प्रभावशाली कैसे बनाऊं।

क्योंकि अंततः व्यक्ति की पहचान उसके बारे में कही गई बातों से नहीं, बल्कि उसके द्वारा जिए गए मूल्यों और उसके चरित्र से बनती है।

लोग क्या सोचते हैं, यह हमेशा हमारे नियंत्रण में नहीं होता; लेकिन हम कैसे सोचते हैं, कैसे व्यवहार करते हैं और कैसा व्यक्तित्व विकसित करते हैं — यह पूरी तरह हमारे हाथ में होता है।

और जब व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को निरंतर निखारने में लग जाता है, तब उसे प्रशंसा की आवश्यकता नहीं रहती; उसका जीवन स्वयं उसकी सबसे बड़ी प्रशंसा बन जाता है।

जिस प्रकार चंदन को बताना नहीं पड़ता कि मेरे पास से सुगंध आती है, सुगंध प्रेमी स्वयं चंदन के पास चले आते हैं। सूरज को बताना नहीं पड़ता कि मेरे पास इतना प्रकाश है, उसका प्रकाश स्वतः ही फैल जाता है और जिसे प्रकाश की, उजाले की आवश्यकता होती है, वे स्वयं अंधकार से बाहर निकाल कर आ जाते हैं। ऑक्सीजन किसी को नहीं कहता कि मुझे सांस के साथ अपने शरीर के अंदर ले लो, जीवित रहोगे; जिसे जीवित रहना होता है, वो स्वयं वायु ले लेते है। पानी कभी नहीं कहता - "मुझे पीने से तुम्हारी प्यास बुझ जाएगी"; जिसे प्यास बुझानी होती है, वे पानी के पास चलकर आते हैं और उसे ग्रहण करते हैं।

किसी दवाई को/औषधि को यह नहीं बताना पड़ता कि मुझे खाने से तुम्हारी बीमारी ठीक हो जाएगी, जिससे तुम स्वस्थ हो जाओगे। जिसे स्वस्थ होना होता है, वे खुद दवाई ग्रहण कर लेते हैं। फल कभी यह नहीं कहते कि भूख लगे तो मुझे खा लो, जिससे तुम्हें पौष्टिकता मिलेगी। जिसे पौष्टिकता चाहिए होती है, भूख लगती है, वो खुद ही फल खा लेते हैं। फूल तितलियों से या भंवरों से कभी नहीं कहता कि मेरे पास आओ, तुम्हें अतर मिलेगा; वे स्वतः ही फूलों के आसपास मंडराने लगते हैं।

ऐसे ही, न जाने प्रकृति से कितने सारे उदाहरण हमारे सामने हर कदम पर प्रस्तुत होते है। हम इन सभी से प्रेरणा ले कि सद्‌गुणों की सुवास यूं ही फैल जाएगी। थोड़ा नजरिया बदलें, जो हमारे हाथ में है, उसे और बेहतर बनाने का प्रयास करें। हमारे व्यक्तित्व की ऊर्जा सभी दिशाओं में फैले। हम जिससे मिलें, उनके दिल पर हमारी सुनहरी सी, सुहानी सी छवि अंकित हो जाए।

अततः कहीं ना कहीं हमारा व्यक्तित्व उस पर ही निर्भर करता है कि आखिर हम क्या ग्रहण करते हैं। जैसे गुलाब के साथ कांटे भी तो होते ही हैं, अब वह हमारे हाथ में है कि हमें केवल गुलाब चुनना है या केवल कांटे। यानी हमारी क्रियाएं बहुत कुछ, या काफी कुछ, उस पर निर्भर करती है जो हम सोचते हैं, कैसा सोचते हैं, या हम क्या देखते हैं, कैसा देखते हैं। हमारा नजरिया कैसा है और उसे देखने, उसका इंटरप्रिटेशन कैसा है।

If you think you are too small to make a difference try sleeping with the mosquito!

हम हर किसी को दो नजरियों से देख सकते हैं। दुनिया में न तो गुणवानों की कमी है और ना ही अवगुणी लोगों की कमी है। हमें आखिर क्यों बार-बार गुणों पर ध्यान देने कहा जा रहा है? क्योंकि जैसे ही हमने किसी एक गुण पर फोकस किया, वैसे ही मेरे भीतर रहा हुआ एक अवगुण समाप्त होने लगता है।

उदाहरण के लिए, मुझे गुस्सा बहुत आता है और मैंने किसी व्यक्ति को देखा, जो हर परिस्थिति में शांत रहता है, संभाव में रहता है। तो जब से मैंने उस व्यक्ति के शांत स्वभाव के गुण को देखा, उस पर ध्यान दिया, उस पर गौर किया, तब से जब भी मुझे गुस्सा आता है, तो मुझे उसका शांत स्वभाव याद

आता है। उसका स्मरण होते ही मैं अपने गुस्से को थोड़ा काबू में कर पाता हूं।

यहां पर कंडीशन है कि मैं प्रायोरिटी किसे देता हूं, गुणों को उत्तम मानना कि, "कितना शांत व्यक्ति है, कितना सही लग रहा है।" ऐसा करते-करते, जब हम सारे गुण को श्रेष्ठ मानने लगेंगे, उन गुना को एक्सेप्ट करते जाएंगे, तो हमारे भीतर रहे हुए सारे अवगुण धीरे-धीरे समाप्त हो जाएंगे और अंत में रह जाएगा केवल हमारा शुद्ध व्यक्तित्व, तराशा हुआ व्यक्तित्व, चमकता-दमकता व्यक्तित्व; ठीक वैसे ही, जिस प्रकार हीरे को तराशते हुए जोहरी अवांछित, अनभिलाषित कोनों को काटकर अलग कर देता है।

कोई मूर्तिकार किसी पत्थर से मूर्ति कैसे बनाता है? वो केवल पत्थर उन हिस्सों को अलग कर देता है जो मूर्ति में नहीं चाहिए अंत में बचती है सिर्फ - मूर्ति।

अक्सर होता यह है कि हमें जो पसंद होता है, हम उसका सदैव सकारात्मक पक्ष देखते हैं। वहीं, जो हमें पसंद नहीं होता, उसका हम सदैव नकारात्मक पक्ष देखा करते हैं। या यूं कहें, जो हम करना चाहते हैं, जैसा हम चाहते हैं, उसके लिए मन को उसी तरह से समझ लेते हैं।

हमारी पसंद-नापसंद भी किसी भी वस्तु, व्यक्ति, स्वभाव, क्रिया को हम अपने स्वयं के हिसाब से देखते हैं। इसका मतलब यह है कि हम चीजों को वैसा नहीं देखते जैसी वह हैं, बल्कि हम उन्हें वैसा देखते हैं, जैसा हम उन्हें देखना चाहते हैं।

सही निष्कर्ष पाने के लिए हमें खुले एवं सुलझे दिमाग से ऑब्जर्व करना होगा।

आज तक हमने अपना जीवन भले ही व्यर्थ किया हो, पर अब जीवन वास्तव में जीना है, आनंद के साथ जीना है।

व्हाट्सएप में, फेसबुक में सुविचार आते हैं। हम उन्हें फॉरवर्ड कर देते हैं, पर क्या हम उन्हें जीवन के मेमोरी कार्ड में सेव करते हैं, या फिर सिर्फ फॉरवर्ड करने के बाद सीधा डिलीट कर देते हैं?

आज भी जब-जब बाधाओं से, कष्टों से, टेंशन से, इन सारी चीजों से हमारा मेमोरी कार्ड भर जाता है, तो स्टोरेज खाली करने के लिए सबसे पहले इन सुविचारों को डिलीट करते हैं और टेंशन को स्टोर करते जाते हैं।

फिर जब हमारा मेमोरी कार्ड टेंशन से, दुख, दर्द, पीड़ा से भर जाता है, हमारे मेमोरी कार्ड में स्टोरेज नहीं रहेगा, तो फिर हम इन सबको मर्ज करके एक बड़ी फाइल बना देंगे। हमने आखिर क्या किया? छोटे-छोटे टेंशन को, छोटी-छोटी समस्याओं को, छोटी-छोटी दिक्कतों को बड़ा बना दिया और फिर उसे सीधा क्लाउड में स्टोर कर दिया।

अब जब हम स्क्रोल करेंगे, तो यही सारी फाइल्स हमारे दिमाग में आती हैं। मतलब, हम इसी का बार-बार चिंतन करने लगेंगे। हमारा सर दर्द टेंशन की वजह से नहीं, बार-बार उसके बारे में सोचकर होता है। बात इतनी बड़ी नहीं होती है, जितना हम उसे बना दिया करते हैं। और कभी-कभी तो हम बातों को इतना बड़ा बना देते हैं कि उनके सामने सारे समाधान, सारे सॉल्यूशन हमें छोटे लगने लगते हैं।

दुनिया में ऐसी कोई जगह नहीं, जो समस्या फ्री जोन हो। दुख आता है, तो हमें तो माल लेकर उसका स्वागत करना चाहिए कि यह हमें तराशने को आया है। बस बात इतनी सी है कि हमें समस्याओं को हैंडल करना आना चाहिए।

हैंडल करना इतना आसान नहीं होता। यानी गुब्बारे में ज्यादा हवा भर दी जाए, तो फूट जाता है, क्योंकि वह हैंडल नहीं कर पाता। लेकिन अगर सही मात्रा में हवा भरी जाए, तो गुब्बारा नहीं फूटता।

हम अपनी अच्छाइयों को बरकरार रखें और कमियों को सुधारने की कोशिश करें।

अगर हम परिवार के बीच में जाते हैं और हमारे मन में टेंशन भरी रहेगी, तो जाहिर-सी बात है, हमारा मन वहां नहीं लगेगा। घर-परिवार तो दिल लगाने की जगह है, दिमाग लगाने की नहीं। जीवन में कोई समस्या हो, तो उसका समाधान खोजने का प्रयास करें। हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि — "मेरे साथ ही ऐसा क्यों होता है? परेशानियों के लिए ऊपर वाला मुझे ही क्यों चुनता है?"

क्योंकि परेशानियां उन्हीं के हिस्से में आती हैं, जो उनसे परेशान नहीं होते, जो उनका सामना डटकर करते हैं।

एक बार एक राजा के दरबार में तलवारों का व्यापारी अपनी तलवारों को लेकर आया। राजा खास तलवारों को अपने हाथ में लेकर देख रहे थे। अचानक से राजा के हाथ से एक तलवार फिसली और राजा के बाएं हाथ की एक उंगली कट गई। पूरे दरबार में हाहाकार मच गया। कुछ लोग तुरंत वैद्य को लाने के लिए दौड़े, किंतु राजा का जो प्रधानमंत्री था, वह अभी तक शांति से खड़ा था।

ज़रा-सा माहौल शांत होने पर, सबसे अंत में मंत्री ने कहा कि — "जो होता है, अच्छे के लिए होता है।"

परिस्थितियां ऐसी नहीं थीं कि राजा इन शब्दों को शांति से सहन कर पाता। राजा को मंत्री की बात पर बड़ा क्रोध आया, बड़ा गुस्सा आया कि उसकी उंगली कट जाना अच्छा कैसे हो सकता है। उस समय तो राजा ने कुछ नहीं कहा, वह कुछ नहीं बोला, लेकिन सोचने लगा कि — "मुझे इस मंत्री से बदला लेना है। इसने मेरी भरी सभा में घोर अपमान किया है। इसने मेरी उंगली कटने को अच्छा कैसे कहा?"

कुछ दिनों बाद राजा मंत्री को शिकार खेलने के बहाने जंगल लेकर जाता है। जंगल में आने के बाद राजा मौका खोजने लगा। आखिर राजा को मौका मिला। उसने मंत्री को एक खाली कुएं में धकेल दिया।

मंत्री कुएं में गिरने के बाद भी बड़ा ही शांत एवं गंभीर था। कुएं में गिरकर भी उसने यही कहा कि — "जो होता है, अच्छे के लिए होता है।"

कुछ देर इधर-उधर घूमने के बाद राजा स्वयं एक पेड़ के नीचे जाकर सो जाता है। कुछ देर बाद जब राजा की आंखें खुलती हैं, तो वह देखता है कि वह आदिवासियों के कबीले में है। अपनी स्थिति देखकर राजा समझ गया कि उसे यहां बलि चढ़ाने के लिए आदिवासी लोग उठाकर ले आए हैं।

आदिवासियों के पुजारी ने कहा कि — "बलि के लिए इस अच्छे दिखने वाले आदमी को तुम उठाकर तो ले आए, लेकिन इसका पूरा एक बार परीक्षण करो कि यह बलि चढ़ाने योग्य है कि नहीं। इसका कोई अंग-भंग तो नहीं?"

जब यह परीक्षण किया गया, तब पाया गया कि उसके बाएं हाथ की एक अंगुली नहीं थी। जब यह मालूम पड़ा, तो राजा को छोड़ दिया गया।

छूटते ही तुरंत राजा वहां से भागता-भागता उस कुएं के पास आया, जहां पर राजा ने मंत्री को धक्का दिया था। मंत्री को जैसे-तैसे बाहर निकालकर राजा ने सारी बातें बताईं और कहा कि — "तुमने बिल्कुल सही कहा था कि जो होता है, अच्छे के लिए होता है। अगर आज मेरी अंगुली ना कटी होती, तो आज मेरे प्राण संकट में थे। पर जब मैंने तुम्हें कुएं में धकेला था, तब भी तुमने यही कहा था कि जो होता है, अच्छे के लिए होता है। तुम्हारे साथ क्या अच्छा हुआ?"

मंत्री बोला कि — "महाराज, अगर आपने मुझे कुएं में ना धकेला होता, तो मैं आपके साथ रहता और आदिवासी मुझे भी बंदी बना लेते। उन्होंने आपको तो छोड़ दिया, लेकिन मेरे तो सारे अंग सकुशल हैं ना, इसलिए वे मेरी बलि चढ़ा देते। जो होता है, अच्छे के लिए होता है।"

Leave the world better you found it!

हमें मंत्री से सीखने वाली बात यह है कि किसी भी परिस्थिति में हम अपनी सकारात्मक सोच कैसे बनाए रख सकते हैं।

कई लोग सोचते हैं — "हमारे एक के बदलने से क्या होगा? हमारे एक के अच्छा सोचने से क्या हो जाएगा? हमारे एक के अच्छा काम करने से क्या हो जाएगा?"

पर याद रखिए कि बूंद-बूंद से घड़ा भरता है। अगर हम दुनिया को बदलना चाहेंगे, तो यह संभव नहीं; हम थक जाएंगे। क्योंकि हर किसी को बदलना हमारे बस की बात नहीं है। दूसरों को बदलने की अपेक्षा अपने आप को बदलना ज्यादा आसान होता है।

जैसे दूसरों का गुस्सा हमें अच्छा नहीं लगता, तो हमें अपनी सहनशीलता बढ़ानी चाहिए, ना कि हर समय, हर वक्त सामने वाले के गुस्से को कम करने का प्रयास करना चाहिए।

खुश रहना हो तो अपनी फितरत में एक बात शुमार कर लो ना
मिले कोई अपने जैसा तो खुद से प्यार कर लो!

महात्मा गांधी ने कहा था कि — "जो बदलाव आप दुनिया में देखना चाहते हैं, पहले वह बदलाव अपने आप में लाइए।"

जैसा हमारा चश्मा होगा, वैसे ही हमें दिखेगा। याद कीजिए, हम हरे रंग का चश्मा पहन लेंगे, तो हमें सब कुछ हरा दिखाई देगा। काला चश्मा पहन लेंगे, तो हमें गोरा आदमी भी काला ही नज़र आएगा। उसी प्रकार, हम जैसे होंगे, पूरी दुनिया हमें वैसे ही नज़र आएगी।

हम एक बार अपने आप को बदलकर देखें, हमारे आसपास क्या परिवर्तन होता है। भले ही देर से बदलेगा, पर जरूर कुछ-न-कुछ बदलाव आएगा। हमेशा दुनिया आपके लिए बदले, यह जरूरी नहीं। कभी-कभी आप भी दुनिया के लिए बदलें।

एक समय की बात है। एक राजा ने सोचा कि मेरी नगरी में कुछ ऐसा होना चाहिए, जो आसपास के किसी राज्य में ना हो, जिसे देखने के लिए दूर-दूर से लोग आएं। कुछ अलग हटके होना चाहिए।

तो राजा को विचार आया कि — "मेरा राज्य इतना बड़ा है, अगर मेरे राज्य में दूध की झील हो, तो मजा आ जाए।"

कुछ दिनों बाद राजा ने फरमान जारी किया कि — "कल रात को एक परिवार में जितने सदस्य हैं, उतने लोटे दूध झील के लिए खोदे गए गड्ढे में डालेंगे।"

एक औरत ने सोचा कि — "अरे, इतने दूध के बीच में मैं अगर एक लोटा पानी डाल दूंगी, तो क्या ही पता चलेगा?"

अगली सुबह उठकर राजा गड्ढे के पास पहुंचा, यह देखने के लिए कि दूध की झील तैयार हो गई या नहीं। सबने देखा कि पूरा गड्ढा दूध की बजाय पानी से ही भरा हुआ है।

तब मंत्री ने राजा को समझाया कि — "महाराज, सभी ने यही सोचा होगा कि इतने सारे दूध में, वह भी रात के अंधेरे में, मेरे एक लोटे पानी से क्या ही फर्क पड़ेगा। इसलिए आज गड्ढे में दूध की जगह पानी ही भरा हुआ है।"

हो सकता है कि किसी एक के करने से बदलाव न आए, लेकिन किसी एक की पहल करने से बाकियों को प्रेरणा जरूर मिलती है, और वह प्रेरणा बदलाव लाने में मदद करती है।

हमें आखिर क्या करना है? केवल प्रयास करना है कि हम अपने दिमाग में अच्छे विचारों का संग्रह करें।

मैं व्यक्तिगत रूप से एक बात पर विश्वास करता हूं कि हमें अपने मन को, दिल को हमेशा साफ रखना चाहिए। दुनिया गलत करे, वह उनका; मैं सबके लिए अच्छा सोचूं, वह मेरा।

जो हम करेंगे, वही हमारे काम आने वाला है। क्या पता, दूसरों का भला करने से हमारा ही भला हो जाए। ईश्वर की लीला या प्रकृति के इरादे हर कोई नहीं समझ पाता है।

अपने विचारों को शुद्ध बनाने के लिए हम अपने दोस्तों के साथ समय बिता सकते हैं, जिनसे हमें सकारात्मकता प्राप्त हो। अपने मन को अपनी पसंदीदा विषयों की ओर ले जा सकते हैं।

अपने दिमाग को रिफ्रेश करके एक नई दिशा देंगे और एक साफ दिमाग से काम करेंगे, तो परिणाम भी बहुत उत्तम मिलेंगे।

जैसे वाशिंग मशीन साफ होती है, तो कपड़े भी साफ धुलेंगे। अगर वाशिंग मशीन के अंदर ही गंदगी रही हुई है, वाशिंग मशीन ही साफ-सुथरी नहीं है, तो कपड़े क्या ही साफ धुलेंगे।

जीवन हमें मजबूरी से नहीं, मजेदार तरीके से जीना है। आपने अक्सर सुना होगा — "अच्छे लोगों की अच्छी पसंद होती है।" सभी अपने लिए अच्छे-से-अच्छी चीज पसंद करते हैं।

तो थोड़ा चिंतन करें कि हमारे लिए क्या अच्छा होगा, हमारे लिए क्या बेहतर हो सकता है और हमारे विचार कैसे होने चाहिए। दुनिया वैसे ही है, जैसी आप देखना चाहते हैं।

एक बार एक बच्चे से टीचर ने पूछा कि — "बेटा, तुम कितने साल के हो?"

बच्चे ने जवाब दिया — "6 साल।"

टीचर ने अगला सवाल किया कि — "बताओ, तुम्हारी माताजी कितने साल की हैं?"

बच्चे ने जवाब दिया — "वह भी 6 साल।"

टीचर ने सोचा, लगता है बच्चे को प्रश्न समझ नहीं आया। टीचर ने अगला सवाल पूछा कि — "बेटा, बताओ तुम्हारे पिताजी कितने साल के हैं?"

बच्चे ने उत्तर दिया — "6 साल।"

टीचर थोड़ा-सा गुस्सा हुई और बोली कि — "बताओ, तुम्हारे दादाजी कितने साल के हैं?"

बच्चे ने फिर जवाब दिया — "6 साल।"

टीचर ने चिढ़कर अगला सवाल किया कि — "दादी जी कितने साल की हैं?"

बच्चे ने फिर कहा कि — "6 साल।"

अब टीचर से रहा नहीं गया। टीचर ने उससे कहा कि — "क्या तुम्हें स्कूल में इसी तरह से पढ़ाया जाता है? जाओ, पीछे जाकर मुर्गा बन जाओ।"

उस 6 साल के बच्चे ने कहा कि — "मैडम, मैंने ऐसा क्यों कहा, कृपया वह भी सुन लीजिए। आपने पूछा मेरी मम्मी कितने साल की हैं, तो वह 6 साल की हैं, क्योंकि मेरी मम्मी मम्मी कब बनीं? जब मैं हुआ। उससे पहले वह पत्नी रही होंगी, बहू रही होंगी, लेकिन मम्मी तो 6 साल पहले ही बनीं ना। फिर मेरे पिताजी पिताजी कब बने? जब मैं हुआ। उसके पहले वह बेटे रहे होंगे, पति रहे होंगे, पिता तो मेरे आने के बाद ही बने ना। और उसी तरह दादाजी और दादी जी भी।"

इस छोटी-सी घटना के पीछे का मतलब यह है कि हमेशा बड़े ही सही हों, यह जरूरी नहीं। छोटे भी सही हो सकते हैं।

इसी बात को यूं कहा जाए कि हमेशा सिर्फ हम ही सही हों, यह सही नहीं है। कभी सामने वाले भी सही हो सकते हैं। इसमें कोई दो राय होनी ही नहीं चाहिए।

यह नजरिया कितना सुंदर और कितना महत्वपूर्ण है, कितना सुकून देने वाला है, ज़रा सोच कर देखिए। हमारे समन्वय से, हमारे प्रेम से, हमारी शांति में किसकी कमी है?

समझने की बात यह है कि हमारे अक्सर झगड़े, हमारे झंझट का मूल कारण यह होता है कि — "मैं ही सही।" अपने आप को सही साबित करना और दूसरे को गलत साबित करना।

हमारी अदालतों में इतनी ज्यादा केस इसी लिए तो हैं, क्योंकि हर पक्ष अपने आप को ही सही साबित करना चाहता है। हालांकि कानून की अपनी व्यवस्था है, मगर क्या हो अगर सभी पक्षों का थोड़ा समन्वय हो? बिना कारण सिर्फ सामने वाले को गलत साबित करने की और खुद को सही साबित करने की होड़ ना रहे।

हालांकि अदालतों के बारे में ऐसा सोचना अत्यधिक महत्वाकांक्षा हो सकती है, लेकिन अगर हम इसे अपने दिन-प्रतिदिन की घटनाओं में बिठाने का प्रयास करें, तो अक्सर हमारी अशांति और असमाधान का कारण दूसरे को गलत साबित करना और खुद को सही साबित करना होता है।

हमारी प्रायोरिटी ही सामने वाले को गलत साबित करना होती है और फिर खुद को सही साबित करना। ज़रा सोचें कि अगर खुद को सही साबित करने की ज़िद ना रहे, तो परिस्थितियां कैसी होंगी?

हमें सामने वाले की हर क्रिया का और ज्यादा कड़क रिएक्शन देने की जो आदत है, "ईंट का जवाब पत्थर से" देने की जो आदत है, उसे ज़रा सुधारना होगा। बार-बार के रिएक्शन से एक्सप्लोजन/विस्फोट ही होते हैं।

यह समझे कि जहां पर हम हस्तक्षेप करने के लिए, बोलने के लिए तड़पने लगे या अजीब उछलने लगे, तो वह क्षण, वह स्थितियां वास्तव में हमारी परीक्षा की घड़ियां हैं कि कब तक हम अपनी प्रतिक्रिया दिए बिना रह सकते हैं। हमें वास्तव में यही सीखना है — **शांत रहना।**

माथे पर एक भी साल ना लाना हमारे समाधि भाव का कराटो मीटर है कि हमारी समाधि संभव कितने खड़े हैं, या हम सुखी होने का सिर्फ और सिर्फ ढूंढ करते हैं, और हमारी शांति-समाधि कितनी नकली है कि विपरीत

परिस्थितियों का पानी एक बार पढ़ना नहीं कि उसका खोटापन सामने आ जाता है।

लोग अक्सर सोशल मीडिया पर पोस्ट डालते हैं — "enjoying vacations in Mexico", और होते तो नोएडा में; अपने पति के साथ तस्वीरें शेयर करके लिखते हैं — "my lifeline cutie pie" और न जाने क्या-क्या। शायद इस एक फोटो के लिए दोनों में झगड़ा ही क्यों ना हुआ हो।

हम आखिर यह सब कर के लोगों को क्या विश्वास दिलाना चाहते हैं? हम बहुत आधुनिक हैं, या हम बहुत सुखी हैं? हमारी अपनी अलग दुनिया है? क्या दिखाना चाहते हैं?

और इस पर जब लोग भरोसा नहीं करते, तो हम और ज्यादा उदास हो जाते हैं। इसलिए नहीं कि हम वास्तव में सुखी नहीं हैं; इसलिए कि खुद को आधुनिक बताने में, खुद को सबसे अलग दिखाने के लिए, दिखावा करने के लिए, जितनी हमने मेहनत की थी, जितना अपना समय निवेश किया था, उतना रिटर्न नहीं मिला। और अगर लोग हमारी इन झूठी तामझाम से प्रभावित हो भी गए, तो जरा विचार करके देखिए, ऐसे प्रभाव का हम क्या करेंगे? अंत में हम तो वैसे ही रहेंगे।

असल में हमारा यही दोहरा स्वरूप हमारे लिए परेशानियां खड़ी कर देता है। हम क्यों लोगों को दिखावे के लिए कुछ और, और असल में कुछ और होते हैं?

बजाय इसके, हम ऐसा प्रयास क्यों नहीं करते कि हम अपने व्यक्तित्व को ही इतना निखार लें कि हमें और किसी बाहरी झूठी सुंदरता की परत की आवश्यकता ही ना पड़े?

हम अपने ही स्वरूप को, अपने ही व्यक्तित्व को लेकर इतने आत्मविश्वासहीन कैसे हो सकते हैं कि न जाने बाकियों पर प्रभाव डालने के लिए हम कितने-कितने झूठे-झूठे उपाय करते रहते हैं?

आखिर में, हम खुद से ही सच्चाई छुपाते हैं। हमें अपनी कमियों को छुपाने के बजाय प्रयास करना चाहिए कि हम अपने दोहरेपन को छोड़कर अपनी वास्तविक छवि को ही बेहद सुंदर और प्रभावशाली बनाएं।

हम जैसे भीतर से हैं, वैसे ही बाहर भी रहें। अगर हम जैसा लोगों को दिखाना चाहते हैं, वैसा ही व्यक्तित्व असलियत में तैयार करने में सफल हो जाएंगे, तो वही हमारी असली सफलता होगी।

कभी-कभी हम लोगों के बाहरी रूप को देखकर अच्छे-बुरे का अनुमान लगा लेते हैं, लेकिन एक कहावत है कि —

“Don’t judge a book by its cover”

हम इस कहावत को अक्सर भूल जाते हैं।

लोगों के पहनावे से, बोलचाल से, हम उन्हें अच्छे-बुरे की श्रेणी में नापने लगते हैं। लेकिन ज़रूरी यह है कि पहले व्यक्ति के बारे में हम ज़रा-सा जान लें।

कभी हमारे साथ ऐसा भी होता है कि हम बाज़ार से फल लेकर आए — अच्छे, महंगे फल, देखने में बड़े ही मज़ेदार; बाहर से तो बिल्कुल चकाचक, रसीले, किंतु घर आने पर पता चले कि यह फल तो अंदर से सड़ गया है या कच्चा है।

इसी प्रकार, जब हम किसी व्यक्ति को उसके बाहरी रूप से उसके व्यवहार के बारे में आंकने लगते हैं, और बाद में जब हमें पता चलता है कि हमारी फोरकास्टिंग, यानी कि हमारा पूर्वानुमान, गलत था, तो मन में ग्लानि होना स्वाभाविक है।

हमें इसका मलाल तो ज़रूर होगा कि — “यह आदमी इतना भी बुरा नहीं था, जितना मैं समझ लिया था, मान लिया था।” और यह मलाल तब और ज़्यादा बढ़ जाता है, जब हम उस व्यक्ति के समक्ष इस बात को स्वीकार नहीं कर पाते।

इसी बीच एक छोटी-सी घटना हुई। एक बार एक रेखा नाम की लड़की थी। रेखा लगातार तीन हफ्तों से स्कूल देर से आ रही थी। अध्यापकों ने भी एक-दो दिन तक तो सहन किया, किंतु दो-तीन दिन के बाद वे हर दिन लगातार तीन हफ्तों तक रेखा को देरी की सज़ा देते रहे।

चौथे हफ्ते तो अचानक से उसने आना ही बंद कर दिया, परंतु पूरी कक्षा में किसी का यहाँ तक ध्यान भी नहीं गया। यहाँ तक कि अध्यापक का भी कभी

ध्यान नहीं गया कि रेखा इतने दिनों से आ क्यों नहीं रही है। अध्यापक ने यह पूछना भी ज़रूरी नहीं समझा।

पाँचवें हफ्ते वह बाकी बच्चों से पहले ही स्कूल पहुँच गई, पर उस दिन भी किसी को फर्क नहीं पड़ा कि — "अरे रेखा, तुम पहले आ गई? क्या बात हो गई?" उल्टा, जब टीचर क्लास में आए, तो उन्होंने उससे कहा — "रेखा, लगता है अब कहीं जाकर तुम पर पनिशमेंट का असर हुआ है। इसी तरह समय से आया करो।"

रेखा से ज़्यादा देर रहा नहीं गया। रेखा ने कहा — "मैं कुछ कहना चाहती हूँ, इजाज़त हो तो कहूँ?"

टीचर ने कहा — "बिल्कुल, बोलो।"

रेखा बोली — "असल में बात यह थी कि मेरी माँ की तबीयत कुछ हफ्ते पहले बिगड़ गई थी। उन्हें अस्पताल में भर्ती करना पड़ा। मेरे पिता नहीं हैं और ना ही मेरा कोई भाई-बहन है, इसलिए मुझे ही उनके लिए खाना बनाना होता था। घर के सारे काम करती थी, माँ को अस्पताल में देखने जाती थी। इन सारी वजहों से मैं स्कूल थोड़ा देर से आती थी।

पिछले हफ्ते ही मेरी माँ की मृत्यु हो गई। सारे अंतिम संस्कार आदि के कार्य करने में हफ्ते भर का समय लग गया, इसलिए मैं पिछले हफ्ते स्कूल नहीं आ सकी। किंतु अब मेरे पास कोई काम नहीं है, तो मैं ज़रूर समय पर आऊँगी।"

जैसे ही यह बात पूरी कक्षा ने सुनी, सारी कक्षा एक गहरे सन्नाटे में चली गई। सभी शांत हो गए। आखिर बोलने के लिए बचा ही क्या था?

लोगों को देखकर उनकी तुलना करना गलत ही नहीं सर्वथा अनुचित है। जो जैसा दिखे वह वैसा ही होगा जरूरी थोड़ी है। कहीं मैंने पढ़ा था कि चार प्रकार के व्यवहार होते हैं -

1. बाहर से कठोर और अंदर से भी कठोर
2. बाहर से नरम अंदर से कठोर
3. बाहर से कठोर अंदर से नरम
4. बाहर से नरम और अंदर से भी नरम

आप जैसा सोचो, वैसा ही हो — यह ज़रूरी नहीं। पर जब हमारे मन के विरुद्ध कोई काम होता है, तो हमें क्रोध आना स्वाभाविक है। लेकिन आप शांति से, धीरे से अपनी बात रख सकते हैं कि — "भाई, ऐसा किया जाए तो बेहतर है। यह कार्य ज़्यादा उपयुक्त लगता है।"

ज़रा ठंड रखिए। कभी-कभी आप दूसरों की बात मान लीजिए, कभी-कभी दूसरे आपकी बात मान जाया करेंगे। और अगर दूसरे आपकी बात नहीं भी मानते हैं, तो उससे हमारे जीवन में कोई खास प्रभाव पड़ने वाला नहीं है।

एक समय अर्जुन और कृष्ण साथ में भ्रमण कर रहे थे। अर्जुन ने श्रीकृष्ण से निवेदन किया कि — "कुछ ऐसा लिखकर दीजिए, जिसे सुख में पढ़ा जाए तो दुःख हो, और दुःख में पढ़ा जाए तो खुशी हो।" कृष्ण जी ने केवल एक ही बात लिखी — "यह वक्त भी गुज़र जाएगा।"

अगर इसी बात को और कम शब्दों में कहा जाए, तो यह कहा जाएगा कि संसार के सभी क्षण क्षणभंगुर हैं। इस दुनिया में कुछ भी सदा के लिए रहने वाला नहीं है। तो लोगों के लिए बनाई गई हमारी मानसिकता, लोगों की बनाई हुई हमारी छवियाँ — वे कहाँ तक रहने वाली हैं? आज कोई गरीब है या उसकी स्थिति ठीक नहीं है, तो उसके आज से हम उसके आने वाले कल की धारणा नहीं बना सकते। आज से कल को बिल्कुल नहीं तोला जा सकता। एक क्षण मात्र लगता है राजा को रंक और रंक को राजा बनने में। एक बार जब पुण्यवाणी का ज़ोर लग जाए, तो व्यक्ति को फर्श से अर्श तक पहुँचने में ज़रा-सा भी समय नहीं लगता।

किसी कवि ने कहा है कि —

"जब लगे जिसके पुण्य का पहुँचे नहीं पार,

तब उसको माफ हैं अवगुण कर हजार।"

पुण्य जब उदय होता है, तब पाप वन की लकड़ी की तरह जलकर भस्म हो जाते हैं। क्या पता, कब किसका पुण्य उदय में आ जाए! मगर हम कौन होते हैं किसी को अच्छा-बुरा, सही-गलत नापने-तौलने वाले? अच्छा-बुरा ठहराने वाले? जो हमें बुरा लग रहा है, ज़रूरी नहीं कि वह सबको बुरा लगे। कोई आदत, कोई व्यवहार, जो हमें नापसंद हो, यह आवश्यक नहीं कि वह सबको नापसंद हो। दूसरे को वह पसंद भी हो सकता है।

मान लीजिए कि कोई मेकअप करके बाहर आया। उसे स्वयं लग रहा है कि वह बहुत अच्छा दिख रहा है, पर वहीं कुछ ऐसे भी लोग होंगे जिन्हें वह मेकअप बिल्कुल भी रास न आया हो। किसी को ऐसा लगे कि उसने अपने चेहरे पर कुछ ज़्यादा ही लगा लिया है। कहने का आशय केवल इतना-सा है कि सबका अपना-अपना दृष्टिकोण होता है। सबके पास अपनी-अपनी बुद्धि होती है। तो हम केवल इतना कर सकते हैं कि सभी को सज्जन मानकर उनकी खूबियों को देखने का प्रयास करें। उनकी खूबियों को देखकर मन में सामने वाले के प्रति अच्छे विचार रखें — कि "सब अच्छे हैं।"

इतना सोचने के बाद भी, कभी कुछ विपरीत हो जाए, हमारा मन बदल जाए, या हमारे मन में कुछ अलग तरह के विचार आने लगें, तब भी हमें एक बार ठहरकर अवश्य सोचना चाहिए। किसी व्यक्ति को समझा जा सकता है, लेकिन केवल एक बार की बातचीत में या एक बार के मिलन में यह कहना कि — "मैं तो लोगों को एक मिनट में पहचान लेता हूँ, एक बार में पहचान जाता हूँ" — यह न्यायसंगत नहीं लगता।

Always use branded items in life

For lips – truth
For voice – prayer
For eyes – sympathy
For hands – charity
For face - smile

कई बार हमारे साथ ऐसी घटनाएँ घटती हैं कि कोई व्यक्ति, जब तक उसे हमारा परिचय नहीं होता, तब तक बड़ा खड़ूस, दिखावेबाज़, अपनी ही जताने वाला — आधी-अधूरी जानकारी में कैसा भी लगता हो; पर जब उससे परिचय होता है, जान-पहचान बढ़ती है, तब वही व्यक्ति हमें बड़ा ही अच्छा लगने लगता है। एक दृष्टि से कहा जाए, तो हर व्यक्ति अपने पहचान वालों के लिए, अपने शुभचिंतकों के लिए अच्छा ही होता है। जब तक हमारा किसी से अच्छा परिचय नहीं होगा, तब तक हम उसकी अच्छाइयों को समझेंगे कैसे? और सबसे ज़्यादा दिक्कत तो इस बात की है कि हम केवल अपने विचारों तक सीमित नहीं रहते। हमारी जो गलत धारणाएँ होती हैं, गलत मानसिकताएँ होती हैं, उन्हें हम सबके साथ बाँटते रहते हैं — "वह तो ऐसा लगता है", "वह ऐसा करता है", "मुझे तो लगता है कि वह ऐसा है।" मतलब,

हमें खुद को ही नहीं मालूम होता, फिर भी हम चार लोगों के बीच गलतफ़हमियाँ पैदा कर देते हैं।

"सर्वं क्षणिकम्" अर्थात इस जगत में कुछ भी सदा के लिए नहीं है। कुछ भी परमानेंट नहीं है। सुख-दुःख, हँसी-खुशी, अमीरी-गरीबी — सब क्षणिक हैं, पल भर के हैं। कुछ देर रहेंगे, फिर बदल जाएँगे। इसलिए हमें "मैं" और "मेरा" पर अधिक आग्रह नहीं रखना चाहिए। अगर "अपनापन" की जगह "मेरापन" ले लेता है, तो समझ जाना चाहिए कि यह हमारे मानसिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, क्योंकि यह हमारी बीमारी के लक्षण हैं। इसे बीमारी का संकेत समझ लेना चाहिए। हमें "सिंप्टम" और "बीमारी" के बीच का अंतर समझ में आएगा, तभी तो हम निरोगी बन पाएँगे।

जीवन में सदा लोगों को समझने का प्रयत्न करें परखने का नहीं!

"सर्वं क्षणिकम्" के कॉन्सेप्ट को एक और तरीके से समझने का प्रयास करते हैं।

एक बार एक बहुत बड़े घर की मालकिन ने अपने सारे बर्तन बदल दिए। पुराने बर्तनों की जगह नए बर्तन, पुरानी क्रॉकरी की जगह चमचमाती हुई नई क्रॉकरी ले आई।

अब सेठानी के यहाँ जो कामवाली काम करने आती थी, उसने सेठानी से पूछा कि — "इन पुराने बर्तनों में से जो आपके काम के न हों, उन्हें मैं ले लूँ क्या?"

सेठानी ने कहा — "एक-दो क्यों? तू सारे बर्तन ले जा। मेरे तो यह किसी काम के नहीं हैं।"

कामवाली ने अपने सारे पुराने बर्तन बदलकर सेठानी के पुराने बर्तन सजा लिए। योग-संयोग से वहाँ से एक भिखारी निकला। कामवाली ने अपने सारे पुराने बर्तन उस भिखारी को दे दिए। भिखारी भी बहुत खुश हो गया; आज उसकी झोपड़ी में पहली बार बर्तन आए थे।

इस पूरी घटना में आखिर हुआ क्या?

जो वस्तुएँ सेठानी के लिए बेकार थीं, वही किसी और के लिए लग्ज़री बन गईं। वहीं कामवाली के लिए जो सामान बेकार था, वह एक भिखारी के लिए कीमती बन गया।

There is a big difference between
being human and being a human being!

अब समझने वाली बात यह है कि, एक नज़रिए से देखा जाए, तो सारी वस्तुएँ कीमती थीं — फिर चाहे वे सेठानी की हों या कामवाली की। किसी-न-किसी के लिए हर एक वस्तु, जो किसी और के लिए बेकार थी, वही दूसरे के लिए कीमती थी।

कोई भी वस्तु ज़्यादा-से-ज़्यादा दस दिन, पंद्रह दिन, एक महीना या दो महीने तक नई लगती है। उसका एक क्रेज़ रहता है; उसके बाद वह सामान्य हो जाती है।

पुनः विचार कीजिए — वस्तु एक ही है, पर किसी के लिए वह व्यर्थ है, तो किसी के लिए अत्यंत उपयोगी। तो आखिर कैसे उस वस्तु की उपयोगिता या व्यर्थता सिद्ध की जा सकती है? यह तो हमारे मन की धारणा पर निर्भर करता है। और अक्सर हमारे मन की धारणाएँ ही हमें दुःखी बनाती हैं। हमारे मन में किसी को लेकर कोई धारणा है — किसी भी कारण से। शायद हमने ऐसा कुछ देखा हो, सुना हो या महसूस किया हो। हो सकता है कि उसका केवल एक ही पक्ष हम जानते हों। फिर यदि कोई हमें दूसरा पक्ष बताए और हमारी धारणा बदलने का प्रयास करे, तो हमारी सीमित सोच उस दूसरे पक्ष को स्वीकार नहीं कर पाती। हमें लगता है कि — "जिस व्यक्ति के बारे में आज तक हम ऐसा सोचते थे, उसकी छवि अचानक कैसे बदल सकती है?"

अक्सर हमसे गलती यह होती है कि पहली बार में बनाई हुई धारणा को ही त्रिकालिक, शाश्वत सत्य — जिसे अंग्रेज़ी में "यूनिवर्सल ट्रुथ" कहा जाता है — मान बैठते हैं। और ऐसे में स्वीकार्यता लगभग समाप्त हो जाती है।

फिर शुरू होता है — अपनी पुरानी धारणा को गलत कैसे न मानें, और सामने वाले को गलत कैसे सिद्ध करें। हम दोनों पक्षों को जानना ही नहीं चाहते। हमें जितना मालूम है, हम उतने को ही सम्पूर्ण सत्य मान लेते हैं।

सही और गलत का निर्णय तुरंत लेने की आदत-सी लग गई है। पर कोई भी निर्णय लेने के लिए हमारी सही सोच अति आवश्यक है। अगर हमारी सोच सही होगी, तो हम परिस्थितियों और व्यक्तियों की वास्तविकता को समझकर सही निर्णय ले पाएँगे। फिर मन में किसी भी प्रकार के द्वंद्व, किसी भी प्रकार के सवाल होने का प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि मन में एक शांति होती है, एक तसल्ली होती है कि हमने संकीर्ण सोच के साथ कोई नादानी नहीं की।

हमारे साथ अक्सर ऐसा होता है कि हम जल्दबाज़ी में कुछ सुन लेते हैं, कुछ देख लेते हैं, और तुरंत अपना निर्णय ले लेते हैं, अपना जजमेंट तैयार कर लेते हैं। बाद में जब थोड़ी और जानकारी मिलती है, तब हमें उस बात का मलाल होने लगता है कि — "अरे, मैंने तो जो समझा था, वह गलत निकला। यह व्यक्ति तो बिल्कुल विपरीत निकला।"

मान लीजिए, हम किसी व्यक्ति से पहली बार मिले। किसी भी कारण से दो बातें हुईं और आपको उस व्यक्ति का व्यवहार अच्छा नहीं लगा। आपने तुरंत अपना जजमेंट तैयार कर लिया कि — "यह आदमी तो बड़ा रूड है, इसे सही ढंग से बात करना नहीं आता, सीधे मुँह बात नहीं करता।" इस प्रकार के बहुत-से विचारों की पूरी फाइल हमने उसके बारे में तैयार कर ली।

फिर कुछ महीनों बाद वही व्यक्ति आपसे दोबारा मिला, लेकिन आज उसका मिजाज़ बिल्कुल बदला-बदला-सा लगा। वही व्यक्ति पहले के मुकाबले काफी बेहतर लगने लगा। हो सकता है कि दूसरी बार मिलने पर हमारा पहले वाला जजमेंट बदल जाए।

और तीसरी बार जब उससे मिलें, तो फिर उसके प्रति हमारा दृष्टिकोण बदल जाए। इत्तेफाक से उस व्यक्ति से आपकी और भी मुलाकातें होती रहीं। अब वह आपका अच्छा परिचित बन गया, आपका करीबी मित्र बन गया।

तब आपको महसूस हुआ कि — "अरे, मैं तो इसे कैसा-कैसा समझता था, और असल में यह कितना शांत, प्रसन्न और मज़ेदार व्यक्तित्व वाला इंसान है!"

अर्थात, जो व्यक्ति हमें पहली बार कुछ समय के लिए बुरा लगा था, उसके प्रति अब हमारा पर्सपेक्टिव, उसे देखने का नज़रिया, बिल्कुल बदल गया। मतलब, अगर हमने जल्दबाज़ी में आकर अपना जजमेंट नहीं दिया होता, या

पहले से उसके प्रति अपने भाव तैयार नहीं किए होते, तो अपने-आप कुछ समय बाद सही पर्सपेक्टिव मिल ही जाता।

घूम-फिरकर सारी बातें हमारे नज़रिए पर आकर रुकती हैं। आखिर क्यों और क्या ज़रूरत है हमें हर किसी को ग्रेड देने की — "यह अच्छा है, यह बुरा है"? हम अपने दिमाग की स्टोरेज में हर उस व्यक्ति की जजमेंट की फाइल सेव करके रखते हैं, जिसे हमने बिना सोचे-समझे, बस जल्दबाज़ी में तैयार कर लिया है।

इसी बात को एक और उदाहरण से समझते हैं। मान लेते हैं कि हम कभी घूमने-फिरने और छुट्टियाँ मनाने के लिए किसी दूसरे शहर में जाते हैं। वहाँ पहुँचते ही किसी चोर ने हमारा सामान चोरी कर लिया। ऊपर से जाने से पहले पूरी जानकारी भी नहीं थी, और गलत सीज़न में, गलत समय पर घूमने चले गए। उस स्थान की वास्तविक नैसर्गिक सुंदरता भी देखने को नहीं मिली।

ऐसी स्थिति में छुट्टियाँ बिताने के बाद आपका पहला विचार क्या होगा? यही कि — "पूरा पैसा बर्बाद हो गया। फालतू ही आ गए। यहाँ तो कुछ भी नहीं था देखने के लिए। लोगों ने जबरदस्ती ही इसे इतना फेमस कर रखा है।"

पर कुछ समय बाद, इत्तेफाक से आपका फिर उसी शहर में जाना हुआ। लेकिन इस बार वातावरण का मिजाज़ बदला हुआ था। पहले के मुकाबले इस बार शहर कई गुना बेहतर, खुशनुमा-सा लग रहा था। उसी स्थान की सुंदरता आपका मन मोह रही थी, और इस बार तो आपका वहाँ से वापस लौटने का मन ही नहीं कर रहा था। जो शहर आपका सामान चोरी होने की वजह से, गलत समय पर जाने की वजह से, पहले आपको उजड़ा-सा, रोमांच से दूर और फिजूलखर्ची लग रहा था, अब वही आपको बहुत मनभावन लगने लगा।

आज, अभी, यहीं

दोनों ही उदाहरणों में एक बात समान है — कि पहले जो आपको पसंद नहीं था, वही कुछ समय बाद पसंद आने लगा। और ऐसा होने पर आपको अपना फैसला अवश्य गलत लगा होगा कि — "अरे, यह तो ऐसा नहीं था। मैं खामखा ही इसे बुरा समझ बैठा था।"

Too many people are looking for the right person instead of trying to be the right person!

हमें किसी की भी पूर्व-निर्धारित छवि नहीं बनानी चाहिए। किसी की छवि बनाने की बजाय, ज़रा ठहरकर, थोड़ा समय लेकर, समग्र रूप से सोच-विचार करके अपने निष्कर्ष पर पहुँचना चाहिए। अंततः हमारा जो भी पर्सपेक्टिव, जो भी नज़रिया था, वह क्षणिक था — कुछ समय के लिए था। ज़रा-सी परिस्थितियाँ बदलीं, ज़रा-सा समय बदला, ज़रा-सा लोगों का भाव बदला, और हमारा अनुभव बदल गया; उस विषय के प्रति हमारा दृष्टिकोण बदल गया।

यहाँ तो हमने केवल "सर्वं क्षणिकम्" को एक दृष्टि से समझने का प्रयास किया है। "सर्वं क्षणिकम्" एक बेहद बृहद एवं गहन विषय है, जिसे जीवन के कई मोड़ों पर, भिन्न-भिन्न प्रकार से लागू करके, अपने मन को शांत रखा जा सकता है। अपने मन की शांति को बनाए रखा जा सकता है और सुखी व समृद्ध जीवन-शैली का निर्माण किया जा सकता है।

अब ज़रा सोचिए कि इसी तरह हमने किसी भी व्यक्ति, वस्तु या कार्य के प्रति कोई गलत धारणा बना ली हो — कि "यह कार्य तो बहुत कठिन होगा", "यह कार्य नहीं करना चाहिए", या कुछ और।

लेकिन हो सकता है कि वास्तव में वह हमारे लिए कोई सुनहरा अवसर लेकर आया हो। हो सकता है उसके आने से हमारे जीवन को कोई नई दशा और दिशा मिल जाती, या कोई सकारात्मक बदलाव आ जाता। मगर हमने कभी उसे सही तरह से समझने की कोशिश तो दूर, उसे गलत ही समझ लिया, उसकी गलत छवि बनाकर बैठ गए।

तो इन सब में उसका तो शायद कुछ नुकसान हुआ भी न हो, मगर हमारा अवश्य नुकसान हुआ होगा। आशा है कि हम इस बात को ज़रा गंभीरता से सोचेंगे, इस पर थोड़ा चिंतन करेंगे, और फिर अपने आसपास के प्रसंगों में अपना मत बहुत उतावली में आकर नहीं बनाएँगे। यदि हम थोड़ा समय लेकर, शांत मन से सही निर्णय लेना सीख जाएँ, तो जीवन में बड़े-बड़े पछतावों, बड़े-बड़े दुःखों और अशांति से स्वयं को सुरक्षित रख पाएँगे।

वस्तु कैसी है, यह महत्वपूर्ण नहीं; हम उसे कैसा देखते हैं, वह मायने रखता है।

एक बकरी के सामने बड़ी और मोटी काँच की दीवार रखी थी, और उसकी दूसरी तरफ एक शेर को रखा गया। अब बकरी डरने लगी कि — "अभी शेर आएगा और मुझे मार देगा।"

भले ही शेर कभी उस काँच की दीवार को भेदकर आ ही न सके, या उसे तोड़ ही न पाए, फिर भी बकरी को शेर डरावना लग रहा था। किंतु वास्तव में डरने जैसी कोई बात ही नहीं थी, क्योंकि बीच में इतना मज़बूत शीशा लगा हुआ था। लेकिन बकरी के साथ ऐसा हो रहा था कि वह वास्तविकता को छोड़कर शेर के आतंक को, उसके डरावने स्वरूप को याद कर रही थी, इसलिए घबरा रही थी। अर्थात, शेर के प्रति उसका जो दृष्टिकोण था, वही उसे शीशे की मजबूती का ज्ञान नहीं होने दे रहा था।

सोचने वाली बात है कि कहीं किसी कार्य या वस्तु के प्रति हमारा दृष्टिकोण भी ऐसा तो नहीं, जो हमें उसके असली चरित्र, असली स्वभाव और वास्तविकता से अनभिज्ञ रखे हुए हो?

बकरी ने जैसे सोच लिया था कि — "शेर ने मुझे देख लिया है, अब वह मुझे ज़िंदा नहीं छोड़ेगा।" कहीं वैसे ही हमने भी किसी कार्य को केवल उसकी जटिलता देखकर यह धारणा तो नहीं बना ली कि — "यह कार्य मुझसे नहीं होगा"?

और फिर यदि कोई हमें समझाए कि वास्तव में वह कार्य कितना सरल है, या हम उसे कितनी सहजता से कर सकते हैं, तो भी शायद हम विश्वास न कर पा रहे हों। तो ज़रा-सा अपना आत्मविश्वास बढ़ाइए, उस कार्य के प्रति अपना नज़रिया बदलिए, और जो कार्य कठिन लगता है उसे भी सरल मानकर एक बार करके देखिए।

क्या पता, वही कार्य आपकी नई पहचान बन जाए।

2.
बंधे एक डोर से

अंग्रेजी में कहावत है, “put yourself in someone's shoes”। क्या हो अगर आपको कोई बिना गलती के डांटने लगे? जाहिर सी बात है, हमें अच्छा नहीं लगेगा। वैसे ही, जब हम किसी पर भी बेबुनियाद आरोप लगाएंगे, तो उसे भी तो अच्छा नहीं लगेगा। कहने का आशय यह है कि जैसा व्यवहार हम दूसरों से करें या करते हैं, कुछ पलों के लिए, कुछ समय के लिए, वैसा ही व्यवहार स्वयं पर अनुभव करके देखें।

नौकर की गलती होने पर जानवरों की तरह डांट देते हैं। उम्र से बड़े नौकर को तू, तेरी आदि इन सब से संबोधन करते हैं। यह सारी बातें कहां तक उचित है? हम किसी को बुरे शब्द कह रहे हैं, कोई दूसरा यदि हमें ऐसे ही बोले, तो कैसा अनुभव होगा?

“ कुछ पलों के लिए शांति से बैठकर चिंतन करें। चिंतन करने से चिंताएं कम होती है तथा चिंता का एक ही समाधान है — चिंतन करना।”

Do it now, sometimes 'later' becomes 'never'!

अगर हम किसी दुखी व्यक्ति के दुख में साथी नहीं बन पा रहे हैं, तो कोई बात नहीं, पर लक्ष्य रखना चाहिए कि हम कम से कम किसी के दुख का कारण तो नहीं बने।

यह जो शेयर मार्केट है, इसका तो अनुमान भी लगाया जा सकता है कि अभी चढ़ेगा या गिरेगा। वर्तमान परिस्थितियाँ इस प्रकार की है, तो इन इन शेयर्स की कीमतें बढ़ सकती है, इन शेयर्स की कीमत घट सकती है। इस तरह कई अनुमान लगाए जा सकते हैं। लेकिन सुख दुख का जो शेयर मार्केट है, इसका तो हम जरा सा भी अंदाजा नहीं लगा सकते कि यह कब चढ़ते चढ़ते गिर जाए और कब गिरते गिरते चढ़ जाए।

यह सारी बातें हमारे किए जा रहे कार्यों पर, कर्मों पर निर्भर करती है। हम कैसे कम करते हैं, या हमने पूर्व में किस प्रकार के कर्म किए हैं। **करोड़पति, रोड़पति** में केवल एक 'क' शब्द का अंतर होता है।

"वक्त कब किसके फेर में आ जाए, किसी को नहीं पता। कई बार जज को भी वकील करने पड़ जाते हैं।"

इसलिए हमेशा बेहतर चुने, अच्छा करें, अर्थात वह करें जो सभी को अच्छा लगे। आखिर हमें वही मिलता है, जो हम देना जानते हैं। वैसा ही मिलता है, जैसा हम देना चाहते हैं।

कहावत भी है कि —

"सुख दिया सुख होत है, दुख दिया दुख होय,

आप हणे नहीं अवर को, आपने हणे ना कोय।"

इसका अर्थ बड़ा ही सरल है। सुख देने से सुख मिलता है, दुख देने से दुख। अगर आप किसी और को नहीं सताते, तो आपको भी कोई नहीं सताएगा।

मनुष्यों की प्रवृत्ति है कि हमें सुख बहुत आनंदकारी लगता है और हम सब सुख ही चाहते हैं। और ईश्वर ने, या कहें प्रकृति ने, तो हमारे लिए इतनी अच्छी व्यवस्था कर रखी है कि हम जो देंगे, हमें वैसा मिल जाएगा।

तो हमारे हाथ में ही है कि हम क्या देना चाहते हैं। आपको जो चाहिए, वह आप दूसरों को देने का प्रयास कीजिए। बदले में आपको वह सुकून, वह शांति सहज में मिल जाएगी।

व्यक्ति की पहचान उसके व्यक्तित्व से होती है, उसके कपड़ों से या उसके धन-दौलत से नहीं होती। व्यक्ति की पहचान उसके आचरण से, उसके व्यवहार से होती है। जो मानव दूसरों के सुख-दुख का ख्याल रखता है, जो दूसरों के दुख में दुखी तथा दूसरों के सुख में सुखी बनता है, वही वास्तव में मानव कहलाने के योग्य है।

यकीन मानिए, जब एक बार हमारी वजह से हमारे साथ वाले लोग मुस्कुराएंगे, चाहे उनकी उस वक्त परिस्थितियां कैसी भी हो, मगर आपके संपर्क में आते ही अगर लोगों को कुछ अलग शांति की अनुभूति होती है, तो वास्तव में आप सफल की गिनती में आते हैं।

हम कुछ ऐसा करें, कुछ ऐसा अपने व्यक्तित्व को बनाए, ऐसा निखारें कि लोग हमारा साथ पाने के लिए आतुर रहें — कि "कब इससे वापस मुलाकात होगी?"

अगर ऐसा लोग हमारे बारे में सोचने लगे, तो मान कर चलिए कि आखिर में यही हमारी असली संपत्ति है। व्यक्तित्व तो ऐसा होना चाहिए कि एक उदाहरण स्थापित हो जाए — कि "आदमी हो तो ऐसा, दोस्त हो तो ऐसा, रिश्तेदार हो तो ऐसा।"

जब किसी के बुरे वक्त में हम उसके काम आते हैं, जब किसी बेसहारा को हमसे सहारा मिलता है, तब सामने वाले के हृदय से प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से जो दुआएं निकलती हैं, वह हमें इतना बल देती हैं, इतनी शक्ति देती हैं, जो हमें कभी बेसहारा होने नहीं देती।

कहते हैं कि जो काम दवा नहीं कर सकती, वह काम दुआ करती है। इसलिए दुआओं की फिक्स्ड डिपॉजिट (एफडी) करना प्रारंभ कर देना चाहिए। दुआ लेने के साथ-साथ हमें दुआ देना भी आना चाहिए, क्योंकि ताली एक हाथ से नहीं बजती। आप कुछ इनवेस्ट करेंगी, तभी तो रिटर्न मिलेगा।

इस जगत में सभी जीवों से हमारा नाता है। हर व्यक्ति, हर वस्तु आपस में प्रेम के रिश्ते से बंधा होता है। कई व्यक्तियों में जन्म से रिश्ता होता है, जिसे हम ब्लड रिलेशन कहते हैं, खून का रिश्ता कहते हैं। लेकिन उसमें अगर प्रेम न हो, व्यवहार न हो, तो वह रिश्ते किस काम के? उन बनावटी रिश्तों का क्या ही महत्व रह जाता है?

Forget the past,
Trust the future,
Live the present!

रिश्ते केवल खून के नहीं होते, रिश्ते केयर के होते हैं। रिश्ते साथ निभाने से होते हैं, सेल्फलेसनेस के रिलेशंस होते हैं।

यहां तक कि एक मुस्कुराहट का भी रिश्ता होता है। जैसे कोई पड़ोसी है, उससे दिन भर या यूं तो कभी ज्यादा बात नहीं होती, लेकिन जब भी निकलते हैं, आमने-सामने मिलकर एक मुस्कुराहट दे देते हैं और अपने-अपने काम पर चल देते हैं।

सुबह ऑफिस जाते वक्त, काम पर जाते वक्त, दुकान पर जाते वक्त, मुस्कान मात्र से अगर अभिवादन हो जाता है, तो वास्तव में एक रिश्ता है। और अगर आपस में प्रेम का, सौहार्द का रिश्ता है, तो वह आसानी से टूटता नहीं। यही प्रेम की, "मैत्री" भाव की ताकत होती है।

क्यों ना हम एक प्रतियोगी की भांति, अपने लिए ही एक प्रतियोगिता करें कि बाकी लोग मुझे ज्यादा अच्छे से ट्रीट करते हैं, या मैं बाकियों कोमैत्री ज्यादा अच्छे से ट्रीट करता?

हम अक्सर लोगों को "अपना-पराया" इन शब्दों में बांटने लगते हैं, लेकिन ज़रा सोचिए — क्या हम स्वयं को अपना मानते हैं, या हम खुद के लिए भी पराए हैं? क्या वाकई में दुनिया भर में, जिन्हें हम दूसरे लोग कहते हैं, उनमें ही दाग लगा हुआ है, या हमारी ही ऐनक में धूल जमी हुई है? हमारे चश्मे का कांच गंदा है?

शिकायतों से ज़रा ऊपर उठकर, दूसरों को भी अपना मानकर, उन्हें अपनापन देंगे, तो निश्चय ही उनसे भी आपको बदले में जरूर अपनापन मिलेगा।

किसी के साथ हम गलत व्यवहार करें, वही व्यवहार हमसे हो, तो हमें जो तकलीफ होगी, वही तकलीफ सामने वाले को होगी। इस बात को ज़रा गंभीरता से लेना आवश्यक है।

हम कहते हैं — "औरों की भूलों को भूले, हम खुद की भूल सुधारें ।" अब इस बात को आचरण में भी लाना है।

किसी व्यक्ति से गलती हो गई, तो आप भूल जाइए — "रात गई, बात गई।" गलतियां होने पर सामान्यतः सभी माफी मांगते हैं। कभी-कभी दूसरों की खुशी के लिए हम बिना गलती के भी माफी मांग लें।

"अपने हक के लिए लड़ रहे हैं" — इस बात की आड़ में कितना समय हमने बिता दिया। क्या शांति, सुकून हमारा हक नहीं? केवल गलतियों के लिए दूसरों से माफी मंगवाना ही काफी है क्या? क्या यही हमारा लक्ष्य है?

फिर से ज़रा-सा चिंतन करें इस बारे में।

माफी मांगने से कोई ऊंचा-नीचा नहीं होता, बल्कि माफी मांगने से आपका विनय झलकता है कि — "देखो, अपनी गलती को इसने सहर्ष स्वीकार कर लिया।"

जो व्यक्ति दूसरों द्वारा गलतियां बताने पर, गलतियां सुधारने पर बड़ा प्रसन्न होता है, वही वास्तव में सफल बन सकता है, वही आगे चलकर महान बन सकता है।

कोई खिलाड़ी है, अगर उसने अपने कोच के द्वारा गलती बताने पर कोच की बात नहीं मानी होती — कि "जब देखो तब टोकते रहते हैं, मेरी गलतियां निकालते रहते हैं" — तो क्या आज वह जिस मुकाम पर पहुंचा है, उस मुकाम को हासिल कर पाता?

फिर से ज़रा सोचने की बात है।

जैसे पेड़ों पर फल-फूल लग जाने पर पेड़ झुक जाते हैं, या अगर पेड़ों पर फल न भी लगे, तो कम-से-कम छाया तो दे ही देते हैं। जीवन में पेड़ों की तरह ही विनम्रता धारण करनी है, क्योंकि विनम्र व्यक्ति सभी को प्रिय लगता है।

मान लीजिए कोई व्यक्ति है। उसे उसकी खामियां बताई जाएं तथा वह व्यक्ति उन्हें स्वीकारने के बदले दो बातें सुना दे — कि "जब देखो तब मुझे डांटते रहते हो, कभी मेरी तारीफ नहीं करते।" उसके साथ रहना किसे पसंद होगा? कौन उससे ज्यादा बात करना पसंद करेगा?

समझनी है जिंदगी तो पीछे देखो और जीनी है जिंदगी तो आगे देखो!

वहीं कोई दूसरा व्यक्ति है, जिससे जब भी उसकी खामियां बताई जाएं, तो वह और बेहतर बनने का प्रयास करता हो। ऐसे व्यक्ति की सभी प्रशंसा करने लगते हैं। हमें अपनी गलतियों को accept करना चाहिए। आखिर सही सोच ही अच्छे-बुरे का ज्ञान कराती है। कहते हैं — "गलत सोच और पैर की मोच व्यक्ति को आगे बढ़ने नहीं देती।"

"मैं सही हूं" — यह ठीक है, पर "मैं ही सही हूं" — यह ठीक नहीं है।

जटाशंकर और घटाशंकर दोनों ही एक ट्रेन से सफर कर रहे थे। दोनों आमने-सामने बैठे थे। जटाशंकर को ठंड लग रही थी और घटाशंकर को

गर्मी लग रही थी। जटाशंकर ने खिड़की बंद कर दी और आराम से बैठ गया। घटाशंकर को यह अच्छी नहीं लगी। वह उठा और उसने खिड़की खोल दी। दोनों में विवाद आरंभ हो गया। एक खिड़की खोलता है, दूसरा बंद कर देता है।

झगड़े को बढ़ता देख पास में बैठे वृद्ध ने कहा, "अरे, तुम दोनों क्यों लड़ रहे हो? खिड़की में तो शीशा ही नहीं है।"

ठीक ऐसी परिस्थितियों में हमारा एगो चौकीदार के रूप में सामने आ जाता है। उसे खिड़की को खोलो या बंद करो, एक ही मतलब है। इस तरह हम भी खिड़की खुली है या बंद, केवल इस पर ध्यान देते हैं। खिड़की में शीशा है या नहीं, उस हवा आ रही है या नहीं, इस पर ध्यान नहीं देते।

हम असल में वास्तविकता का अनुभव प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं। एक बार एक बिच्छू पानी में डूब रहा था। साधु की नजर उस बिच्छू पर पड़ी और उन्होंने अपना हाथ आगे बढ़ाया। बिच्छू ने बाहर आने के लिए डंक मारा और फिर पानी में गिर गया। बार-बार बिच्छू डंक मारता और पानी में गिर जाता। लोगों ने कहा कि, "छोड़ो महाराज, उसके बाहर आने की नियत ही नहीं है। बार-बार डंक मारता है।"

साधु ने बड़ी सरलता से उत्तर दिया, "यह तो बिच्छू है, फिर भी अपना स्वभाव नहीं छोड़ रहा, तो फिर मैं तो मनुष्य हूं। मैं अपना स्वभाव क्यों छोड़ूं?"

वास्तव में जो हमारा स्वभाव है, उस पर हमारा ध्यान कभी नहीं गया, क्योंकि हम बाहर के शोर में इतने मजबूर हो गए कि भीतर आने का समय ही नहीं मिला। भीतर के संगीत को सुनने की इच्छा ही नहीं हुई।

चिंतन करें कि हम जैसे बिगड़े हुए आए हैं इस दुनिया में, इस दुनिया से ऐसे ही जाएंगे या सुधार कर जाएंगे। आज तक हमने दूसरों को सुधारने का बहुत प्रयास किया, किंतु आज से हम जरा खुद को सुधारने की प्रैक्टिस करें।

सही सोच हमें स्वीकार्यता सिखाती है, स्वीकार करना सिखाती है। गलतियों को, कमियों को स्वीकार करने से ही हममें विनीतता, विनम्रता और सरलता का विकास होगा, और हम सफल हो सकेंगे।

कहा है कि धन से वस्तु का महत्व अधिक होता है, वस्तु से व्यक्ति का महत्व अधिक होता है, तथा व्यक्ति से व्यक्तित्व का महत्व अधिक होता है। और

अगर हमें अपना व्यक्तित्व अच्छा बनाना है, अपने व्यक्तित्व को प्रखर बनाना है, तो हममें स्वीकार्यता आवश्यक है।

समय के पास इतना समय नहीं है कि वह आपको दोबारा समय दे सके!

कबीर जी ने भी अपने दोहों में कहा है —

"निंदक नियरे राखिए, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी, साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय।"

इस दोहे का मतलब यह है कि जो व्यक्ति मेरी निंदा करता हो, जो व्यक्ति मुझे मेरी गलतियां बताता हो, उसे तो मैं अपने आंगन में, अपने ही घर में एक कुटिया बनाकर रखूं, अपने आसपास रखूं। क्योंकि ऐसा करने से, बिना साबुन के, बिना पानी के, वह मुझे पवित्र, पावन और निर्मल बना देगा, मेरा स्वभाव निर्मल हो जाएगा।

जब-जब हमारी बुराई हो, पीठ पीछे बातें हों, तो घबराना नहीं चाहिए और उन बातों को ध्यान से सुनना चाहिए, समझना चाहिए। क्योंकि **बातें उन्हीं की होती हैं, जिनमें कुछ बात होती है**।

अगर हम दूसरों के बारे में अच्छा सोचेंगे, तो हमारा ही अच्छा होगा। इस नज़रिए को ज़रा समझने का प्रयास करें। खुशियां चंदन की तरह होती हैं। हम दूसरों के माथे पर लगाएंगे, तो हमारे खुद के हाथों से भी खुशबू आने लगेगी, हमारे खुद के हाथ भी महकने लगेंगे।

हम दूसरों का बुरा करना चाहेंगे, तो आखिर में हमारा ही नुकसान होना है। क्योंकि आपने अक्सर सुना होगा कि — "जो दूसरों के लिए गड्ढा खोदता है, वह स्वयं उसी गड्ढे में गिरता है।" और दूसरों के लिए गड्ढा खोदने के लिए भी स्वयं को पहले उस गड्ढे में उतरना पड़ता है। दूसरों का मुंह काला करने के लिए पहले हमें अपने ही हाथ काले करने पड़ते हैं। अर्थात, जो हम करते हैं, वही वापस घूम-फिर कर हमारे पास आता है।

जन्म से तो हमारी किसी से शत्रुता नहीं होती, कोई हमारा शत्रु नहीं होता। शत्रु तो हम स्वयं बनाते हैं। और वास्तव में मनुष्य के आविष्कार हानिकारक नहीं होते, शत्रुता ही सबसे खतरनाक हथियार है, क्योंकि इसी हथियार के चलते ये सारे परमाणु हथियार बने, वरना तो उनकी आवश्यकता ही नहीं

होती। और शत्रुता का कारण होता है — क्रोध। क्रोध अक्सर काम बिगाड़ता ही है, और कहा जाता है कि क्रोध तो सद्गुणों का वध कर देता है।

शोध के अनुसार यह पता चला है कि 9 घंटे शारीरिक श्रम करने से जितनी शक्ति क्षीण होती है, उतनी शक्ति मात्र 15 मिनट क्रोध करने में हो जाती है।

क्रोध के भी चार प्रकार होते हैं —

1. हवा में खींची रेखा के समान।
2. पानी में खींची रेखा के समान।
3. रेत पर खींची रेखा के समान।
4. पत्थर पर खींची रेखा के समान।

जिस प्रकार अगर कोई हवा में रेखा बनाने का प्रयास करे, तो वह संभव ही नहीं; ऐसा क्रोध अगर हमें आता है, तो किसी बात का खतरा ही नहीं।

इसी प्रकार, पानी में रेखा खींची जाए, तो वह ज्यादा समय तक नहीं रहती; 5-10 पल में वापस अदृश्य हो जाएगी। जैसे क्रोध किया, तुरंत माफी मांग ली या प्रायश्चित कर लिया, तो जिस प्रकार कुछ देर में पानी शांत हो जाता है, उसी प्रकार कुछ समय में वह मामला भी शांत हो जाएगा तथा हमारा मन भी शांत हो जाएगा।

रेत पर खींची हुई रेखा कुछ घंटे या एक-दो दिन में पूरी तरह मिट जाती है। जिस प्रकार रेत पर खींची गई रेखा एक-दो दिनों में मिट जाती है, वैसे ही हमने झगड़ा किया, कुछ समय तक हमें उस बात का क्रोध भी रहा, गुस्सा भी रहा, लेकिन आखिर में हमने सामने वाले से माफी मांग ली, या उसने आकर माफी मांग ली। आपस में सारी बातें समझकर हमने उस मामले को खत्म कर दिया, तो चीजें वापस से पटरी पर आ जाएंगी।

लेकिन सबसे खतरनाक तरह का जो क्रोध है, वह होता है किसी पत्थर पर खींची गई रेखा के समान। जिस प्रकार पत्थर पर अगर कोई रेखा बनाए, तो वह इतनी आसानी से नहीं मिटती। कई वर्षों तक पत्थरों पर से नहीं मिटती। पत्थर पर बनी वह रेखा पूरी तरह तो शायद ही कभी मिटती होगी...

"सपने वो नहीं जो हम सोते हुए देखते हैं, सपने वो हैं जो हमें सोने नहीं देते।" - डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम

मान लीजिए कि आपने किसी से झगड़ा कर उसके साथ बोलना ही बंद कर दिया। अब किसी प्रकार का व्यवहार ही नहीं है उसके साथ। इस तरह का क्रोध सबसे ज्यादा हानिकारक है।

इस प्रकार का क्रोध अगर हमने किया है, तो तुरंत हमें रिवर्स गियर लगाना चाहिए और चाहे गलती किसी की भी हो, हमें उस बात के लिए माफी मांग लेनी चाहिए। क्योंकि ऐसा वैर-क्रोध वर्षों तक ही नहीं, शास्त्रों में कहा गया है कि ऐसा क्रोध तो जन्म-जन्म तक चलता रहता है।

हमें आपस में प्रेम रखना चाहिए, एक-दूसरे का ख्याल रखना चाहिए, क्योंकि प्रेम ऐसी चीज है, जिसे हम जितना बांटेंगे, उतना ही ब्याज के साथ हमें वापस मिलेगा।

जगत में सभी प्रेम चाहते हैं। कोई डांट-फटकार, क्रोध नहीं चाहता। लोगों को प्यार मांगने वाले व्यक्ति से, प्यार देने वाला व्यक्ति अधिक पसंद आता है। जीवन रूपी दूध में शक्कर घोलने का प्रयास करें। केवल स्वयं की नहीं, आसपास के सभी के जीवन में मिठास लाने का प्रयास करें।

हम बेमतलब की चीजों पर अपने जीवन का इतना अमूल्य समय यूं ही बर्बाद कर देते हैं। तो अगर मिठास का एक बीज बोने से, अगर प्रेम के समान हीरे की खेती होती है, तो हम ऐसी खेती क्यों ना करें?

जो नहीं करेंगे, आखिर में उन्हें पछताना पड़ेगा और उन्हें इस बात का अफसोस होगा कि समय रहते हमने ऐसी प्रेम की खेती क्यों नहीं करी।

एकांत में बैठकर ज़रा इस बात पर चिंतन करिए। ज़रा सोचिए कि अगर हमने कोई झगड़ा किया है, तो झगड़े की मुख्य जड़ क्या थी? क्या मुझे इतना क्रोध करना चाहिए था? कहीं मेरी गलती तो नहीं? इन सारी बातों का चिंतन करने से हो सकता है, हमें अपनी भूल का एहसास हो।

एक बार पांच मित्रों ने मन बनाया कि हम सब मिलकर एक गुफा में जाएंगे। गुफा काफी लंबी थी। उसे पार करने में कम से कम 2 दिन-घंटे लगने वाले थे, इसलिए सभी ने आपस में कुछ काम बांट लिए, जो गुफा के अंदर जाने के लिए बेहद जरूरी थे।

पहला मित्र — लालटेन।
दूसरा मित्र — माचिस।

तीसरा मित्र — तेल।
चौथा मित्र — बत्ती।
पांचवा मित्र — अतिरिक्त लालटेन।

सभी ने अपने-अपने काम बांट लिए और गुफा में प्रवेश करने के लिए तैयार हुए। सभी प्रवेश करते हैं और चलते-चलते 30-40 मिनट हुए होंगे कि पहले मित्र की लालटेन बुझ गई। सभी ने दूसरे नंबर के दोस्त की तरफ देखा कि — "भाई, माचिस दो, लालटेन जला लेते हैं।"

"उठो, जागो और तब तक मत रुको जब तक लक्ष्य की प्राप्ति न हो जाए।" - स्वामी विवेकानंद

पर गलती से वह मित्र माचिस लाना भूल गया। माचिस गुफा के बाहर ही छूट गई थी। अब बिना प्रकाश के, बिना रोशनी के, सभी धीरे-धीरे गुफा के अंदर चलने लगे। चलते-चलते एक घंटा बीत गया। अचानक से जो दोस्त सबसे आगे चल रहा था, उसको एक पत्थर चुभता है। पत्थर बेहद नुकीला था और ज़रा जोर से चुभा, तो उसे बड़ा गुस्सा आया। उसने उस पत्थर को उठाया और जेब में रख लिया, यह सोचकर कि — "मैं बाहर निकलता हूं, बाहर निकलने के बाद इस पत्थर को बताऊंगा।"

अंधेरे की वजह से सभी दोस्तों के बीच में थोड़ा-थोड़ा अंतर आ गया था। सबके बीच में थोड़ी-थोड़ी दूरी बन गई थी।

दूसरा मित्र भी जब उस स्थान पर पहुंचा, तो उसे भी पत्थर चुभने लगे। उसने सोचा — "कोई बात नहीं, अंधेरा है, थोड़ा-सा सह लेता हूं।"

"जब भी तुम्हारा हौंसला आसमान तक जाएगा, याद रखना कोई ना कोई पंख काटने जरूर आएगा।" -

तीसरे मित्र को भी चुभा। तीसरे मित्र ने सोचा कि — "पीछे मेरे दो और साथी आ रहे हैं, उन्हें कहीं यह पत्थर ना चुभ जाए।" इसलिए उसने जितना हो सका, उतने पत्थर उठाने लगा। यह सोचकर उसने हाथों में, जितनी भी जेबें थीं, सब जगह वह पत्थर भर लिए और आगे बढ़ गया।

जैसे-जैसे वह आगे बढ़ता गया, उसकी तकलीफ बढ़ती गई, क्योंकि अब वह पत्थर न केवल उसके पैरों पर, बल्कि उसके पूरे बदन पर उसे चुभने लगे थे। कई जगह से पत्थरों की वजह से खून आने लगा, लेकिन उसने पत्थर

फेंके नहीं, केवल यह सोचकर कि — "ये नुकीले पत्थर मेरे पीछे आ रहे दोस्तों को ना चुभ जाएं।"

चौथे मित्र ने सोचा कि — "पीछे मेरा दोस्त आ रहा है, उसे पत्थर ना चुभें।" उसने भी ऐसा सोचकर दो मुट्ठी भरकर वहां से पत्थर उठाकर आगे चल दिया।

आखिरी मित्र जब उस स्थान पर पहुंचा, उसे भी पत्थर चुभे। उसने सोचा — "निशानी के तौर पर कुछ पत्थर मैं साथ में ले लेता हूं।" उसने कुछ पत्थर उठाए और चलने लगा।

बाहर निकलने पर सभी ने जब अपने-अपने पत्थर देखे, तो सभी आश्चर्यचकित रह गए, क्योंकि वह जो नुकीले पत्थर उन्हें चुभ रहे थे, वे असल में पत्थर नहीं थे, बल्कि हीरे निकले।

इस पूरी कहानी का सारांश यही है कि चौथे मित्र ने केवल अपने बारे में नहीं, अपने दोस्तों के बारे में भी सोचा, इसलिए वह मालामाल हो गया। दूसरे ने दूसरों के बारे में नहीं सोचा, इसलिए हीरों के बीच से भी उसे खाली हाथ आना पड़ा। अगर हम कोई कार्य लालच से, स्वार्थ से करेंगे, तो वह आखिर में सही मायने में अच्छे परिणाम देने वाला नहीं होगा|

3.
आज, अभी, यहीं

जो बीत गया, सो बीत गया। अब जो हो रहा है, हमें उस पर ध्यान देना चाहिए, क्योंकि जो होने वाला है वह हमारे आज पर निर्भर करता है। हम जो बीत गया उसे रोते रहते हैं, पुरानी खट्टी-मीठी यादों में खोए रहते हैं, या जो आने वाला है, होने वाला है, उसके सपने देखते रहते हैं। असल में जो सत्य है, जो हो रहा है, उस पर शायद ही हम कभी ध्यान देते हैं। एक जो चला गया, दूसरा जो आया ही नहीं — उनके विषय में हम इतना सोचते हैं, पर आखिर सोचकर हमें मिलता क्या है?

दूरदर्शी होना अच्छा है, लेकिन दूरदर्शी बनने की चाह में कई बार हम केवल भविष्यदर्शी रह जाते हैं। भविष्यदर्शी होने के बाद हम वर्तमान को भुला देते हैं। दूरदर्शी बनने के लिए जो वर्तमान में हो रहा है, उस पर भी ध्यान देना बहुत जरूरी होता है।

Present → Future

Today’s Actions = Tomorrow’s Results

डॉ. Dr. Seuss ने कहा था —
“Don't cry because it's over, smile because it happened.”

ऐसा हो गया, इसलिए रोइए मत। मुस्कुराइए, क्योंकि वह हो गया। जो हमारे साथ बुरा हुआ, उसके लिए रोइए मत। जो होना था, वह हो गया। अब तो अच्छा समय बचा है, अब जो होगा अच्छा होगा, अब अच्छा समय आएगा — इसलिए मुस्कुराइए।

हर वक्त एक-सा नहीं होता। कभी दिन है, तो कभी रात। कभी धूप है, तो कभी छांव। इसलिए कहा जाता है — सुख में फूलिए नहीं, दुख में तड़पिए नहीं, घबराइए नहीं।

भाग्य कोई लिखा हुआ दस्तावेज नहीं है। इसे तो हर रोज खुद के खून-पसीने से लिखना पड़ता है। बीते हुए को बदला नहीं जा सकता, लेकिन जो आने वाला समय है, उसे तो हम संवार ही सकते हैं। हमारे जन्म लेने से पहले हमारी मृत्यु के सिवाय कुछ भी तय नहीं होता। जो हमारे साथ घटनाएं घटने वाली हैं, या हमारे साथ जो घटनाएं घटती हैं, उन सब के पीछे कहीं-न-कहीं हम ही हैं, हमारे द्वारा किए गए अच्छे-बुरे कार्य ही हैं।

भूतकाल में जीने से हम न केवल अपना वर्तमान जाया करते हैं, बल्कि भविष्य को भी खो दिया करते हैं। एक जगह मैंने पढ़ा था —

"Past is experience.

Present is experiment.

Future is expectations.

Use your experience in your experiments to achieve your expectations."

इसका अर्थ है — भूतकाल हमारा अनुभव है। वर्तमान में उस अनुभव का प्रयोग कर, भविष्य में जो हमारी आकांक्षाएं हैं, उन्हें हम प्राप्त करना चाहिए।

अभी वर्तमान में चाहे जो हो रहा हो, जितना भी संघर्ष करना पड़ रहा हो, यह सोचिए कि जब यह संघर्ष पूरा हो जाएगा, जब इसका कुछ सकारात्मक-सा, सुहावना-सा परिणाम आएगा, उस वक्त हमारे पास परेशानियों के लिए, दुख के लिए, रोने के लिए समय ही नहीं रहेगा।

जीवन का कोई भरोसा नहीं। आज है, कल नहीं। या कोई कल था, आज नहीं। हमारा जीवन तो पेड़ पर पड़ी ओस की बूंद के समान है, जो न जाने कब नष्ट हो जाए। अगर कुछ सत्य है, तो वह है वर्तमान। अगर कुछ निश्चित है, तो वह है वर्तमान में हो रही सभी घटनाएं। आगे की सारी बातें, सारी चीजें तो अनिश्चित हैं, और पीछे घटित सारी घटनाएं, जो भी घटी थीं, जैसी भी थीं, वह हो चुकीं। ना अब सुधारी जा सकती हैं और ना ही बिगाड़ी जा सकती हैं।

समय के साथ जिएं, समय के साथ अच्छे कार्य करते चलिए। एक दिन समय हमारे नाम से जाना जाएगा। जैसे आज हमें किसी इतिहास की घटना के बारे में बताया जाता है, तो कहा जाता है कि उस समय की घटना है जब Rama धरती पर थे, यह घटना उस समय की है जब Krishna धरती पर थे, या और किसी महापुरुष के नाम से हमें समझाया जाता है, बताया जाता है कि जब

Jawaharlal Nehru प्रधानमंत्री थे, या जब Atal Bihari Vajpayee की सरकार थी, तब की यह बात है। इस तरह से समय को उपमाएं किसी साधारण व्यक्ति के कारण ही प्राप्त होती हैं।

हमारे विचार हमेशा वर्तमान के हों। चाहे लाखों वर्षों तक जिएं या मृत्यु आज ही आ जाए — यह भाव बहुत ही मुश्किल से आते हैं। यह साहस, यह आत्मविश्वास उन्हीं के भीतर हो सकता है, जो समय के साथ अपने सारे कार्य पूरे करते जाते हैं। वरना जो पुरानी बातों को सोचते-सोचते समय निकाल देते हैं, वह केवल अफसोस से भरे होते हैं, सदा असंतोष से भरे होते हैं कि मुझे यह नहीं मिला, मुझे वह नहीं मिला, काश मैंने ऐसा कर लिया होता, मैं ऐसा नहीं कर सका, मैं वैसा नहीं कर सका। सुकून तो कहीं कोसों दूर जा चुका होता है।

तो यह भाव कैसे ही आ सकते हैं कि अगर आज भी मेरे सामने मृत्यु आकर खड़ी हो जाए, तो मैं खुशी-खुशी, सहर्ष, बिना किसी अफसोस के उस रथ पर सवार हो सकता हूं। मुझे किसी प्रकार का गम नहीं रहेगा।

इस तरह जो केवल भविष्य के सपने संजोए बैठे रहते हैं कि आगे ऐसा कर लेंगे, आगे वैसा कर लेंगे, यह कर लेंगे, वह कर लेंगे, सोचते-सोचते समय निकाल देते हैं, उनके सारे काम यूं ही अधूरे रह जाते हैं, क्योंकि जो वह करने की सोचते हैं, वह कभी वर्तमान के धरातल पर उतर ही नहीं पाते। इसलिए वह भी खुशी-खुशी, बिना किसी अफसोस के नहीं रह पाते।

केवल वह व्यक्ति, जो अपने वर्तमान से संतुष्ट है, वही सुखी होता है, क्योंकि उसे ना तो भूतकाल का अफसोस होता है, ना भविष्य की फिक्र। वह अपने आज में मस्त है। आखिर क्यों हम कल की फिक्र में आज की हंसी बर्बाद करें?

हम वर्तमान में समय के साथ अपनी मेहनत करते जाएं। अपने वर्तमान को संभालेंगे, तो हमारा भविष्य खुद-ब-खुद संवर जाएगा, संभल जाएगा।

बीते क्षण तो चल दिए, शीश पकड़ क्यों रोय?
यह क्षण तेरे हाथ में, इसको भी क्यों खोय?

बीते क्षण तो चल दिए, आने वाला दूर।
यह क्षण आया सामने, कर प्रयोग भरपूर।

वर्तमान के हर एक क्षण का महत्व होता है।
एक साल की कीमत उनसे पूछो, जो इस साल फेल हो गया है।
एक महीने की कीमत उससे पूछो, जिसे पिछले महीने की तनख्वाह नहीं मिली।
एक सप्ताह की कीमत उससे पूछो, जिसने अपना पिछला हफ्ता अस्पताल में बिताया है।
एक दिन की कीमत उससे पूछो, जिसे सुबह से शाम तक मांगने पर भी कुछ नहीं मिला।
1 मिनट की कीमत उससे पूछो, जिनकी ट्रेन 1 मिनट लेट होने की वजह से छूट गई।
एक सेकंड की कीमत उससे पूछो, जो मात्र एक सेकंड में किसी दुर्घटना से बाल-बाल बचा है।

इसी प्रकार, हमें समझना चाहिए कि समय बहुत-बहुत कीमती है और धीरे-धीरे हमारे हाथ से निकलता जा रहा है।

अखबार पढ़ो, तो व्यायाम छूट जाएगा।
व्यायाम किया, तो अखबार छूट जाएगा।
दोनों किया, तो नाश्ता छूट जाएगा।
नाश्ता किया, तो बाकी दोनों छूट जाएंगे।

याद रखिए —

"Time is money, and nobody likes to waste money." — **रौनक**

हमें जो चीज सहज में मिल जाती है ना, हम उसकी कद्र नहीं करते, और उनमें अमूल्य चीजों में से एक है समय।
और समय के पास भी इतना समय नहीं कि वह आपको वापस समय दे सके।
इसलिए, एक बार समय निकलने के पहले अपनी जिंदगी पूरी तरह से, मन भर के जी ले, जिससे अफसोस का कोई मौका ही ना रहे।

Be like water not luxurious but valuable!

समय के साथ इतना चलो, समय का इतना भरपूर उपयोग कर लो, कि बाद में अफसोस के लिए समय ही ना बचे।

खैर, यह सारी बातें हुई भूत, भविष्य, वर्तमान की। अब जरा हम उसे समय की बात करते हैं, जो कि हम यूं ही व्यर्थ में जाया कर देते हैं, अपने आलस्य की वजह से।

चाहे शुरुआत ना कर पाने के डर से, या और किसी भी कारण से, हम ऐसी चीजों को, ऐसी संकल्पना को, या ऐसी शुरुआत को आए दिन डिले करते जाते हैं, टालते जाते हैं, जिन पर हमारा भविष्य, हमारी सफलता, हमारी जीत निर्भर होती है।

मैंने एक जगह पढ़ा था —

"Don't leave anything for later.
Later, the coffee gets cold.
Later, you lose interest.
Later, the day turns into night.
Later, people grow up.
Later, people grow old.
Later, you regret not doing something when you had the chance to!"

जब भी हम बाद के लिए कुछ भी छोड़ते हैं, तो ज्यादातर वह कार्य अधूरे ही रह जाते हैं।
किसी ने कितनी बखूबी बताया कि अगर हम किसी भी कार्य को टालते हैं, तो क्या-क्या नुकसान हो सकते हैं।

हो सकता है कि बाद में वही काम करने का उत्साह खत्म हो जाए। हो सकता है आपको वह कार्य करने का दूसरा मौका ही ना मिले, क्योंकि बाद में दिन की रात हो जाती है।

बाद में, अगर ज्यादा बड़े परिप्रेक्ष्य में देखें, तो जो लोग आज जवान हैं, जो लोग जोश से भरे हुए हैं, अगर उन्होंने अपने आज के कार्य को पूरा नहीं किया, उसे बाद पर छोड़ दिया, तो वही जवान लोग बाद में बूढ़े हो जाएंगे। बाद में वही कार्य करने की शायद उनमें वह ताकत ना रहे।

और बाद में सिर्फ और सिर्फ एक पछतावा, एक अफसोस रह जाता है कि हमारे पास मौका था, समय था, बस हमने थोड़ा सा आलस कर दिया।

हमने अपने आज के काम को कल पर टाल दिया।
इसीलिए वह काम हमेशा-हमेशा के लिए अधूरा रह गया।

यह यूं कह लें कि मन की बात मन में ही रह गई।
हो सकता है बाद में हमें वह कार्य करने की क्षमता ना रहे।

हम आज शुरुआत तो करें, प्रयास तो करें।
पूरी संभावना है कि हमारे शुरू करने पर भी वह कार्य शायद अधूरा रह जाए, लेकिन शुरुआत करने का, ऐसी हिम्मत जताकर काम को शुरू करने का तो सुकून रहेगा।
अपने प्रयास का तो हमें जरूर सुकून रहेगा।

एक तरह से यूं कहा जा सकता है कि हमारा वर्तमान डर के साए में रहता है।
या तो वह पहले की घटनाओं को, या पहले की असफलताओं को याद करके डर जाता है, या भविष्य में होने वाली असफलताओं की गुंजाइश मात्र से डर जाता है।

तो जरा सा प्रयास करें, स्वयं को यह समझाएं कि या तो मैं जीतता हूं, या सीखता हूं।
तब हम वर्तमान में निर्भयता पूर्वक, राजी-राजी अपना पसंदीदा कार्य कर पाएंगे, जो कुछ हम हासिल करना चाहते हैं उसे हासिल कर पाएंगे, और जीवन में कुछ बेहतर कर दिखाएंगे।

हमने यह तो सुना ही होगा कि जोड़ हमेशा मजबूत होना चाहिए। तो यह कहना गलत नहीं होगा कि वर्तमान, हमारे भूतकाल और भविष्य — इन दोनों के बीच के एक जोड़ की तरह ही तो है।

हमारे वर्तमान के पास भूतकाल से सीखने की और भविष्य को संवारने की, दोनों की ही शक्ति रही हुई है।
वर्तमान में अगर हम पुरुषार्थ करते हैं, मेहनत करते हैं, तो हमारे पास अपने भविष्य को सुधारने का सुनहरा अवसर होता है।

तो हम इस अवसर को क्यों चूकें?
इस अवसर का भरपूर लाभ उठाकर, हमें अपने वर्तमान को और अधिक सशक्त और मजबूत बनाना ही चाहिए।

कहते हैं, समय पर ना किया हुआ महान-से-महान कार्य भी फल देने वाला नहीं होता, और समय पर किया हुआ छोटे-से-छोटा अच्छा काम भी महान फलदायक होता है। जैसे बारिश के मौसम के खत्म हो जाने के बाद अच्छी खेती करना चाहें, तो वह मुश्किल है। बारिश से पहले ही अगर बीज बोने का कार्य कर लिया जाए, तो अच्छी फसल होना लगभग तय है।

"जितना कठिन संघर्ष होगा जीत उतनी ही शानदार होगी"-थोमस पेन

यह भी हमारा पुरुषार्थ ही तय करता है कि हमारा वक्त कैसा होगा। हम सभी के पास 24 ही घंटे होते हैं, पर कई बार 24 घंटे चुटकी बजाते ही निकल जाते हैं, तो कई बार ऐसा होता है कि 24 घंटे 24 महीनों की तरह बीतते हैं।

कोई कक्षा का अव्वल आने वाला विद्यार्थी है, तो उसके पास भी 24 घंटे होंगे, और जो विद्यार्थी अनुत्तीर्ण हो गया है, फेल हो गया है, उसके पास भी 24 घंटे थे। किंतु दोनों ने अपना-अपना समय अलग-अलग तरह से उपयोग किया। काबिलियत, गुण, बुद्धि सबके पास होती है। फर्क यह है कि पुरुषार्थ करने वाले का छप जाता है और पुरुषार्थ नहीं करने वाले का छिप जाता है।

एक बार की घटना है। एक राजा के तीन पुत्र थे। राजा बुढ़ापे की ओर बढ़ रहा था, इसलिए युवराज किसे बनाया जाए, इस पर निर्णय नहीं कर पा रहा था।

"पुत्रों की परीक्षा कर श्रेष्ठ पुत्र को युवराज बना दूंगा" — ऐसा सोचकर राजा राजगुरु के पास गया और विनती करने लगा कि — "आप मेरे पुत्रों की परीक्षा लीजिए। जो भी योग्य लगेगा, हम उसे अगला राजा घोषित कर देंगे।"

राजगुरु ने तीनों राजकुमारों को बुलाकर हर एक को 100 सिक्के दिए और कहा कि — "अपने-अपने महलों को 100 सिक्कों से खरीदी गई वस्तुओं से पूरी तरह भर देना। कोई भी जगह खाली नहीं रहनी चाहिए। हम एक दिन बाद मिलते हैं।"

एक दिन के बाद राजा और राजगुरु दोनों, एक-एक करके, राजकुमारों के महलों में जाने के लिए तैयार हुए।

दोनों पहले राजकुमार के महल में पहुंचे, किंतु महल से बड़ी दुर्गंध आ रही थी। फिर भी जैसे-तैसे नाक ढककर दोनों अंदर जाते हैं। जाकर देखा, तो

पूरे महल में बकरियों की मेंगनियां भरी पड़ी थीं। राजगुरु उसे शाबाशी देकर बाहर आ गए।

अब राजा और राजगुरु दूसरे राजकुमार के महल पहुंचे। जैसे ही महल में पहुंचे, छींक और खांसी आने लगी। अंदर जाकर देखा, तो पता चला कि दूसरे राजकुमार ने अपने पूरे महल को जंगली घास से भर रखा था। राजगुरु ने उसे भी शाबाशी दी और बाहर आ गए।

राजा ने राजगुरु से कहा कि — "गुरुदेव, मेरा तीसरा बेटा तो बहुत कमज़ोर निकला, बड़ा ही निकम्मा निकला। पहले के दोनों राजकुमारों ने कुछ तो किया था, लेकिन इसका तो पूरा महल खाली का खाली ही पड़ा है।"

राजगुरु ने कहा — "नहीं, ऐसा नहीं है। ज़रा गौर से देखिए। कितनी मीठी-मीठी खुशबू आ रही है, मधुर संगीत सुनाई दे रहा है। जगह-जगह पर गुलाब के गुलदस्ते लगे हुए हैं, फूलों की महक फैल रही है, और वह एक कोने पर बैठकर मजे से बांसुरी बजा रहा है। असल में, इसने अपने पूरे महल को खुशबू से, मधुर ध्वनियों से भर दिया है। और वास्तव में, तीनों राजकुमारों में यही राजकुमार युवराज बनने के काबिल है।"

जैसे राजा को लगा कि तीसरा राजकुमार बड़ा निकम्मा है, लेकिन उसकी योग्यता को राजगुरु ने पहचान लिया। हमें भी सभी वस्तुओं और व्यक्तियों की उपयोगिता समझने की आवश्यकता है।

"महान कार्य करने का एक ही तरीका है कि
आप जो करते हैं, उसे पसंद करें।" - स्टीव जॉब्स

सभी वस्तुओं, व्यक्तियों, समय और स्थिति का अपना-अपना महत्व होता है। कोई वस्तु छोटी-से-छोटी हो, बड़ी-से-बड़ी हो, भारी-से-भारी हो या हल्की-से-हल्की, या महंगी-से-महंगी या सस्ती-से-सस्ती ही सही — सभी अपने-अपने उपयोग के लिए महत्वपूर्ण होते हैं। सबका अपना-अपना महत्व होता है।

रहीम जी का एक प्रख्यात दोहा है —

"रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिए डारि।
जहां काम आवे सुई, कहा करे तरवारि॥"

अर्थात, हमें बड़ों को देखकर छोटों का तिरस्कार नहीं करना चाहिए, क्योंकि जहां पर सुई काम आती है, वहां तलवार क्या काम आएगी।

हम किसी की अपेक्षा नहीं कर सकते। सुई अपनी जगह महत्वपूर्ण है और तलवार अपनी जगह। हम सोचें कि कपड़ा सिलना हो, तो तलवार का उपयोग करें, तो वह मूर्खता होगी, क्योंकि इस स्थान पर तो तलवार उल्टा काम बिगाड़ देगी। वहीं युद्ध के लिए जाना हो और योद्धा सोचे कि — "सुई हल्की होती है, अतः इसी से युद्ध कर लिया जाए" — तो यह भी मूर्खता होगी, क्योंकि यह संभव ही नहीं है।

कहा है कि भले ही हम छोटे ही हों, परंतु हमारा पुरुषार्थ बड़ा होना चाहिए। हमारा पुरुषार्थ, हमारी क्रियाशक्ति, हमारी उपयोगिता निश्चित करती है।

क्रियाशक्ति जब सही समय के साथ जुगलबंदी करती है, तो नतीजे सदा बेहतरीन निकलकर आते हैं।

ज्यादातर हमारी असफलता के दो कारण होते हैं। पहला तो यह कि या तो अपने विचारों को हम execute नहीं कर पाते, यानी क्रियारूप नहीं दे पाते, हमारे प्रयास शुरू नहीं होते। और दूसरा कारण यह कि अगर हम क्रिया में ढाल भी लें, तो उसे करने का समय सही नहीं रहा होगा।

किस कार्य को किस समय पर करना है, यह समझना भी अपने आप में एक quality है, योग्यता है। जैसे कोई दिन में सोता रहे और रात होते ही काम शुरू कर दे, जिसकी night shift जैसी कोई मजबूरी ना हो, ऐसे व्यक्ति को हम शायद उल्टी खोपड़ी वाला कहें।

या कोई विद्यार्थी गणित के इम्तिहान के समय विज्ञान पढ़ता रहे और विज्ञान की परीक्षा के समय गणित के सवाल हल करता रहे, तो हम उसे शायद नासमझ और बेवकूफ कहेंगे।

ठीक वैसे ही, हमें कब क्या करना है, उसका हमारे जीवन में गहरा संबंध होता है। कहा भी है कि — "जिसने बचपन में पढ़ाई नहीं की, वह पछताते है; जिसने जवानी में धन नहीं कमाया, वह पछताते है; और जिसने बुढ़ापे में तीर्थ नहीं किया, धर्म नहीं किया, वह पछताते है।"

यानी कि जब जिस कार्य को करने का सही समय होता है, तब उसे जो नहीं करता, वह आगे चलकर अवश्य पछताता है। और हमें जिस कार्य का जो

सही समय होता है, तब उस कार्य को कर लेना चाहिए। आलस में रहकर उसे कल पर नहीं डालना चाहिए, कि क्या पता उस कार्य को करने का सही समय हमारे हाथ से निकल जाए। क्योंकि एक बार सही समय हाथ से निकल गया, तो पीछे हमारे पास सिर्फ और सिर्फ अफसोस, सिर्फ पछतावा ही रह जाता है।

अगर खुद से नहीं हारे तो जीत निश्चित है

अब आप सोच रहे होंगे कि अगर ऐसा है, तो कहावत में यह क्यों कहा गया कि — "जब जागो, तब सवेरा।" यानी किसी कार्य को जब करना चाहो, तब शुरू करो। असल में, यह कहावत हमारे पुरुषार्थ के परिप्रेक्ष्य में कही गई है कि अगर कुछ अच्छा करना चाहो, तो पुरुषार्थ करने के लिए कभी देर नहीं होती। और या यूं समझें कि कोई गलती हुई हो और उसका प्रायश्चित करना हो, तो उसे तुरंत स्वीकार कर पुरुषार्थ किया जाए, तो शायद वह गलती सुधर भी जाए।

मगर सुधारने का वक्त हाथ से निकल जाए, और जब भी हमें सद्‌बुद्धि आए और हम उसका प्रायश्चित करना चाहें या पश्चाताप करना चाहें, तो जिस वक्त पश्चाताप हुआ, वह समय कम-से-कम हमारे लिए एक सवेरे की तरह ही होगा।

अस्वीकारिता की नींद से उठकर हमने प्रायश्चित की सुबह से सूर्य को उदित होते देख सके, इस वजह से यह कहावत प्रचलित हुई।

यह बात बिल्कुल सही है कि किसी भी कार्य को कल पर नहीं डालना चाहिए, यह सोचकर कि इस कार्य को करने का सही मुहूर्त अभी नहीं है। अच्छे कार्यों की शुरुआत करने के लिए मुहूर्त नहीं, पुरुषार्थ लगता है। और पुरुषार्थ का सही समय, सही मुहूर्त वर्तमान ही होता है। तुरंत उस कार्य को कर लेना चाहिए।

मैंने इसी संदर्भ में एक कहानी पढ़ी थी। एक शहर में, छोटी-सी बस्ती के छोटे-से घर में, एक 25 साल का नवयुवक रहता था — मोहन। वह ज्यादा पढ़ा-लिखा तो नहीं था, लेकिन एक कार्य में वह बड़ा कुशल और ज्ञानवान था — माली के काम में।

वह कुछ-कुछ जगहों पर माली का काम किया करता था। उसमें यह प्रतिभा थी कि वह बंजर भूमि को भी हरा-भरा कर देता था। उस स्थान की शोभा बढ़ाने में, उसे सुंदर व मनमोहक बनाने में, वह बेहद माहिर था।

उसकी मेहनत, लगन और कार्यकुशलता को देखकर सुरेश नाम के एक बड़े व्यापारी ने उसे अपने घर के गार्डन के लिए काम पर बुलाया। उस व्यापारी का घर शहर के सबसे पॉश इलाके में था।

मोहन अगले ही दिन अपनी साइकिल लेकर साहब के घर पहुंचा। अपने औजार लेकर उसने तुरंत ही काम शुरू कर दिया। कुछ ही समय में, बड़ी मेहनत और अपने हुनर से, उसने बगीचे को इतना सुंदर व मनमोहक बना दिया कि जिसकी कल्पना स्वयं घर के मालिक ने भी न की होगी।

खुश होकर उन्होंने मोहन से पूछा कि — "कितने पैसे लगे?"

मोहन ने बड़ी विनम्रता से कहा कि — "जो भी आप खुशी से देंगे, वह ले लूंगा।"

व्यापारी ने उसे इसका इनाम दिया और आसपास के पड़ोसियों को भी बुलाकर अपना बगीचा दिखाया, और मोहन से परिचय भी कराया।

आज पड़ोस के और भी लोगों ने मोहन को काम पर बुलाना शुरू किया। अब सुबह से लेकर शाम तक मोहन बेहद मेहनत करता, और उसकी आमदनी भी इस वजह से कई गुना बढ़ गई। अब मोहन ने मोटरसाइकिल भी खरीद ली।

इन्हीं सबके बीच, उसे एक बड़े बिल्डर ने अपने पूरे एक प्रोजेक्ट में पौधे लगाने का और बगीचे का काम सौंप दिया।

करीब 2 साल बाद, एक दिन सुरेश को बगीचे से संबंधित कुछ काम निकला। उसने मोहन को फोन लगाया, और अगले ही दिन मोहन अपनी महंगी कार लेकर सुरेश के घर आ गया।

आज मोहन के साथ दो-तीन और काम करने वाले भी थे, और सुरेश सोचने लगा कि आखिर मेरे घर के आगे इस महंगी गाड़ी में कौन आया है।

मोहन ने बड़ी विनम्रता से कहा — "साहब, मुझे पहचाना? मैं मोहन। मैंने आपकी यहीं से काम शुरू किया था।" और थोड़ी ही देर में उसने उसी लगन

से पुनः काम शुरू कर दिया, और अपने बाकी कामगारों से भी थोड़ा अधिक काम करता था।

सुरेश, मोहन के प्रति सम्मान और आदरभाव से गदगद हो उठा कि साइकिल से कार तक पहुंचकर भी मोहन ने पुरुषार्थ करना नहीं छोड़ा। उसके अंदर घमंड किसी बात का नहीं है। वरना, ऐसे कितने ही उदाहरण हैं, जहां लोग जरा-सी कामयाबी मिलने पर पुरुषार्थ करना छोड़ देते हैं।

मोहन आज भी सुरेश के प्रति कृतज्ञ है और उतना ही मेहनती है, जितना वह पहले था। यह सिद्ध करता है कि अगर व्यक्ति निरंतर पुरुषार्थ करता रहे, तो कामयाब जरूर होता है। मेहनत कभी व्यर्थ नहीं होती। आज नहीं, तो कल जरूर निखरकर आती है।

मेहनत हमारी कामयाबी की नींव है, जड़ है। उसे जितना बेहतरीन तरीके से बनाएंगे, उसे जितना अच्छी तरह से संभालेंगे, उतनी जोरदार कामयाबी हासिल करेंगे। कामयाबी की गहराई आपकी दौलत या शोहरत से नहीं, और ना ही आपके पहनावे-ओढ़ावे से होती है। अगर असल में जानना है कि कामयाबी कितनी जबरदस्त है, तो वह समझी जाती है प्रक्रिया से, आपकी मेहनत से।

यह हमेशा याद रखिए — बिना मेहनत के प्राप्त की हुई वस्तु, मेहनत के बिना बनाया गया मुकाम, ज्यादा समय तक टिकता नहीं। क्योंकि उसकी initial strength, उसकी शुरुआती ताकत, उसे मिली ही नहीं।

तो अगर हमें लॉन्ग लास्टिंग सक्सेस चाहिए, लंबे समय तक टिकने वाली कामयाबी चाहिए, तो मेहनत का process तो पूरा करना ही पड़ेगा, मेहनत की प्रक्रिया पूरी करनी ही पड़ेगी।

अतः, हमें मेहनत से या अत्यधिक मेहनत से कभी भागना या कतराना नहीं है। अपितु, ऐसी मेहनत करने के मौके आएं, तो सबसे अग्रणी बनकर, सबसे आगे खड़े रहना चाहिए और मेहनत करने के लिए तत्पर रहना चाहिए।

4.
खुली आँखों के सपने

हमने वास्को डा गामा का नाम तो सुना ही होगा, जिसने समुद्री रास्ते से भारत की खोज की थी। उसने और भी कई देशों की खोज की थी, परंतु मुख्य रूप से उसने भारत की खोज की थी।

जब वह पहली बार खोज पर निकल रहा था, तो उसने कुछ लोगों को अपने साथ में लिया और जाने की तैयारी करने लगा। पूरी तैयारी होने के बाद, खोज पर निकलने से पहले, वास्को डा गामा और उसके साथी अपने परिवार वालों की राह देखने लगे।

वास्को डा गामा के साथियों के परिवार वाले आए और सबने वास्को डा गामा को बुरा-भला सुनाया, और अपने-अपने परिवार वालों को, अपने-अपने बच्चों को लेकर चले गए।

दूसरी बार फिर वास्को डा गामा ने लोगों को इकट्ठा किया, समुद्री यात्रा पर जाने के लिए तैयारी की, और वापस लोगों के परिवार वाले आए। वास्को डा गामा को फिर बुरा-भला सुनाया कि, "अपने आप को क्या समझता है? हमारे बच्चों को भड़काता है। खुद तो डूबेगा ही, हमारे बच्चों को भी ले डूबेगा।"

इस तरह से कई बातें सुनकर, इस बार तो वास्को डा गामा की जहाज को भी तोड़ दिया।

तीसरी बार फिर ऐसा ही हुआ। वास्को डा गामा ने लोगों को इकट्ठा किया, जाने की तैयारी की। इस बार तो लोगों ने जहाज तोड़ने के साथ-साथ वास्को डा गामा को भी पीट दिया और चेतावनी दी कि, "अगली बार से ऐसी हरकतें करेगा, हमारे घर वालों को भड़काएगा, तो अच्छा नहीं होगा।"

चौथी बार फिर वास्को डा गामा ने साथ चलने के लिए लोगों को जैसे-तैसे इकट्ठा किया, परंतु इस बार उसने सबके परिवार वालों के आने से पहले ही समुद्री यात्रा पर निकल गया।

जब लोगों को पता चला, तो लोगों ने भर-भर कर वास्को डा गामा को गालियां दीं कि, "पता नहीं खुद को क्या समझता है!"

कुछ महीनों बाद, जब वास्को डा गामा भारत की खोज करके वापस लौटा, तो वही लोग हाथों में फूलों की माला लिए खड़े थे। और वही लोग, जो पहले वास्को डा गामा को गालियां दे रहे थे, अब वही यह कह रहे थे, "अरे, मुझे तो पहले ही पता था कि यह बहुत बड़ा आदमी बनेगा।"

जो पहले कह रहे थे कि, "यह खुद तो डूबेगा ही, हमारे बच्चों को भी ले डूबेगा," वही लोग कहने लगे कि, "इसने तो हमारा नाम रोशन कर दिया।"

अतः, जब हम कोई नई शुरुआत करेंगे, तो लोग बहुत-सी बातें करेंगे, नकारात्मक बातें कहेंगे; लेकिन जब हम सफल हो जाएंगे, तो लोगों को हम में वह खूबियां भी नज़र आने लगेगी, जो हममें शायद कभी थीं भी नहीं।

यह दुनिया बड़ी ईर्ष्यालु है। कोई अगर आगे बढ़ता है, तो यह दुनिया बर्दाश्त नहीं कर पाती। कई तरह से उसे पीछे धकेलने का प्रयास करेगी।

वास्तव में, जो दुनिया की बुरी बातों को ध्यान दिए बिना आगे बढ़ता चला जाएगा, वही सफल हो पाता है। दुनिया हमें अपने लक्ष्य से भटकाएगी, जरूर भटकाएगी, भड़काने के पूरे प्रयास करेगी। लेकिन अगर हम नहीं भटके, तब तो हम निश्चित ही सफल हो गए — यह मानकर चलिए।

कहते हैं — **"दुनिया का सबसे बड़ा रोग, क्या कहेंगे लोग।"** अगर हम ही यह सोचेंगे, तो हम उनकी बातें ही सुनते रह जाएंगे।

"Don't tell people your dream, show them."

जब हम सफल हो जाएंगे, तो अपने आप ही लोग हमारे बारे में अच्छी बातें करने लग जाएंगे।

अगर हमारी पहचान का कोई व्यक्ति अमीर बन गया, या उसने अपनी अच्छी पहचान बना ली, और उसकी बात निकले, तो सबसे पहले हमारी प्रतिक्रिया क्या होती है? — "क्या तीर मार लिया इसमें? मेरे सामने तो बड़ा हुआ है, ऐसे ही सड़क पर घूमता रहता था, आवारागर्दी करता था।"

मतलब, अभी भी प्रशंसा करने की बजाय हम उसका मजाक उड़ा रहे हैं। अगर हम दूसरों की सफलता को, दूसरों की यश-कीर्ति को नहीं देख पा रहे हैं, तो हममें वाकई में बड़ी खामी है। हमें सबकी प्रशंसा करना आना चाहिए।

अंततः, हमारे साथ जो कुछ भी हो रहा है या होने वाला है, वह इस पर निर्भर होता है कि हम क्या कर रहे हैं। जैसा हम कर रहे हैं, वैसा ही हमारे साथ होने वाला है। तो हम अपने लिए ही, स्वयं के लिए ही, अच्छे कार्य क्यों ना करें?

अगर हम दूसरों का मजाक उड़ाते हैं, तो हमारा भी मजाक बनेगा। क्योंकि जब गेंद को हवा में उछाला जाएगा, तो गेंद अपने-आप वापस नीचे आएगी ही।

"जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहीं।
सब अँधियारा मिट गया, दीपक देख्या माहीं।"- संत कबीर

एक बार मेंढकों की मीटिंग हुई। मीटिंग में तय हुआ कि मेंढकों की एक खंभे पर चढ़ने की रेस आयोजित की जाएगी, दौड़ लगाई जाएगी।

स्थान और तारीख तय हुई। सारे मेंढक एक खंभे के पास पहुंच गए। आधे तो चढ़े ही नहीं, नीचे खड़े होकर खेल देख रहे थे।

जो कुछ ऊपर चढ़े, कुछ दूर ऊपर चढ़ने के बाद वे मेंढक धड़ाम-धड़ाम नीचे गिरने लगे। जैसे-जैसे ऊंचाई बढ़ रही थी, मेंढकों की संख्या कम होती जा रही थी।

अब जो मेंढक नीचे खड़े थे, या जो मेंढक नीचे गिर गए थे, वह कहने लगे कि — "कोई भी मेंढक इस दौड़ को पूरा नहीं कर पाएगा। इस खंभे पर चढ़ना तो असंभव है। कोई इतनी ऊंचाई तक पहुंच ही नहीं सकता।"

हल्ला होने लगा। धीरे-धीरे मेंढकों की संख्या 5... 4... 3... 2... अब केवल एक मेंढक रह गया था, जो ऊपर-ऊपर चढ़ता जा रहा था।

मेंढकों ने कहा कि — "अरे, यह कैसे चढ़ता जा रहा है?" लोग अभी भी शांत नहीं हुए। लोग कहने लगे कि — "अभी 2 मिनट में गिरेगा। यह तो इतनी ऊंचाई से गिरकर मर ही जाएगा। इतने पहलवान मेंढक जब नहीं चढ़ सके, तो यह क्या चढ़ेगा?"

लेकिन वह मेंढक चढ़ता गया, चढ़ता गया, और अंततः वह खंभे पर चढ़ गया और दौड़ जीत गया।

पता लगाया गया कि सिर्फ यही मेंढक आखिर तक कैसे चढ़ता रहा। तब पता चला कि वह मेंढक बहरा था। उसे लोगों की नकारात्मक बातें सुनाई ही नहीं दे रही थीं। उल्टा, उसने जब एक-दो बार नीचे की ओर देखा, तो उसे लगा कि यह सारे लोग जो हल्ला कर रहे हैं, वह मुझे हिम्मत दे रहे हैं, मुझे cheer कर रहे हैं, मेरा मनोबल बढ़ा रहे हैं कि — "तुम कर सकते हो, तुम ऊपर और ऊपर चढ़ते जाओ।" तो उसका मनोबल दोगुना हो गया।

जब हम लोगों की नकारात्मक बातों पर, फिजूल की बातों पर ध्यान देंगे, तब तक हम आगे नहीं बढ़ सकते। अगर हमें भी किसी मुकाम को हासिल करना है, कुछ अजूबा कर दिखाना है, तो लोगों की नकारात्मक बातों को ignore करना होगा।

यह सोचकर कि — "कुछ तो लोग कहेंगे, लोगों का काम है कहना।"

अगर हम ही सोचने लग जाएंगे कि लोग क्या कहेंगे, तो लोग क्या करेंगे? लोगों को उनका काम करने दीजिए, आप अपना काम कीजिए।

लोगों की हर बात को दिल पर नहीं लगाना चाहिए, क्योंकि जाम खरीदते वक्त लोग यही पूछते हैं कि — "मीठे हैं ना?" और बाद में खुद ही नमक लगाकर कहते हैं।

कहने का मतलब यह है कि लोगों की कथनी और करनी में बहुत अंतर होता है। कहना आसान है, करना कठिन। यह कहावत तो हमने कई बार सुनी होगी, लेकिन गंभीर-से-गंभीर, कठिन-से-कठिन कामों में भी हम ज्ञान बांटने में कमी नहीं करते।

संकट के समय हम दूसरों का साथ देने से पहले उन पर दुनिया भर के आरोप लगाएंगे, उन्हें दुनिया भर के ताने मारेंगे — "मैंने तो पहले ही कहा था, ऐसा मत करो। अब किया है, तो भुगतो। ऐसा करने के बजाय वैसा किया होता, तो अच्छा होता।" आदि कई प्रकार से हम सामने वाले को नीचा दिखाने में कमी नहीं करते।

परंतु, एक परिपक्व व्यक्ति की निशानी होती है कि कोई काम बिगड़ने पर वह इस वाक्य का प्रयोग नहीं करता कि — "मैं तो पहले ही कहता था।" क्योंकि यह एक लाइन घाव पर नमक का काम करती है।

जो हो गया, सो हो गया। अब उस बात को याद दिलाकर क्या फायदा? हमें सुझाव से पहले सहयोग देना चाहिए। हमें हमेशा दूसरों के सुख में सुखी और दूसरों के दुख को समझकर उनके दुख में साथी बनना सीखना चाहिए। क्योंकि जब तक हम दूसरों की तकलीफ, दूसरों की पीड़ा का अनुभव नहीं करते, तब तक उस तकलीफ का हमें एहसास नहीं होता।

"सुख के सब साथी, दुख में ना कोई" — इससे थोड़ा ऊपर उठने का प्रयास करना चाहिए।

करना कठिन, कहना वास्तव में सरल होता है। कोई कार्य सुनने में, देखने में, बोलने में बड़ा सरल लगता होगा, लेकिन जब जिम्मेदारी खुद के कंधों पर आती है, तो दादी-नानी याद आ जाती हैं। तब वही आसान कार्य बड़ा ही कठिन हो जाता है

जरा विचार करें, हम क्या कर रहे हैं। बेशक सभी अपने घर के राजा होते हैं, लेकिन जरा सोचकर देखिए कि हमसे हमारे घर का बजट तो संभल नहीं रहा, पर देश के प्रधानमंत्री को, वित्त मंत्री को कहते हैं कि — "ऐसी नहीं, ऐसी नीति लागू करनी चाहिए। बजट फालतू है। इस कानून को बदलकर ऐसा कर देना चाहिए।" इत्यादि।

हम खुद तो गली क्रिकेट में आउट हो जाते हैं, और मैच देखते हुए Virat Kohli को, Rohit Sharma को सिखाते हैं कि — "ऐसा नहीं, ऐसा शॉट मारना था, तो आउट नहीं होता। इसको तो खेलना ही नहीं आता।"

अहंकार ना पालिए जनाब
वक्त के समंदर में कई सिकंदर डूब गये ।

तो प्रयास करें कि अगर हम नहीं कर पा रहे, तो जो लोग मेहनत कर रहे हैं, जो लोग आगे बढ़ने का प्रयास कर रहे हैं, उन्हें कम-से-कम हम साथ देने का प्रयास करें। साथ नहीं दे सकते, तो कोई बात नहीं, कम-से-कम उनका मनोबल तो ना तोड़ें।

और इससे भी महत्वपूर्ण बात — अगर यह सारी घटनाएं हमारे साथ होती हैं, यानी हमें बाकी लोगों से ताने पड़ते हैं, तब ऐसे समय में, ऐसी स्थिति में हमें क्या करना चाहिए?

तो किसी महान विचारक ने कहा है —

"Silence is the best answer for all questions, and a smile is the best reaction for all situations."

अगर हम लोगों की नकारात्मक बातों पर, demotivating बातों पर ध्यान देंगे, उन लोगों को सुनेंगे, तो हमारे दिमाग में वही सारी बातें घूमने लगेंगी। जब हम उन फिजूल की बातों को इतना महत्व देने लग जाएंगे कि हम उन बातों से चिंतित होने लग जाएंगे, परेशान होने लग जाएंगे, तो हम अपने लक्ष्य से बिल्कुल भटक जाएंगे।

मेंढक की तरह सारी बेमतलब की बातों को ignore करेंगे, अनसुना-अनदेखा करेंगे, तो हमारी राह और जिंदगी दोनों ही आसान लगने लग जाएंगी।

लोगों की बातों का जवाब देने में हमें अपनी बुद्धि, अपनी शक्ति खर्च नहीं करनी चाहिए। सामान्य रूप से एक मीठी-सी मुस्कान दीजिए और आगे बढ़ जाइए। जिस दिन हम सफल हो जाएंगे, तो सभी को अपने-आप ही उत्तर मिल जाएगा। फिर आपको हर किसी को अलग से जवाब देने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी।

दूसरे हमारे बारे में क्या सोचते हैं, क्या बोलते हैं, यह कतई महत्वपूर्ण नहीं है। अगर कोई होशियार व्यक्ति असफल हो जाता है, तो वह बेवकूफ, गधा कहलाता है, और वहीं कहीं एक बेवकूफ सफल हो जाता है, तो वह भी होशियार कहलाने लगता है।

लोगों की राय पल-पल में, समय के साथ बदलती रहेगी, और लोगों के प्रति हमारी भी राय बदलती रहेगी। मैंने यह बात पहले भी कही है कि सफलता मिलने के बाद लोगों को हममें वह खूबियां भी नजर आएंगी, जो हममें कभी थीं ही नहीं। और असफल होने पर इसी प्रकार दुनिया भर की बुराइयां भी दिखेंगी, जो हममें कभी थीं ही नहीं।

अतः, हम अपने बारे में क्या सोचते हैं, केवल वही महत्वपूर्ण है। क्योंकि हम अपने बारे में जैसा सोचते हैं, हम वैसे ही बनते जाते हैं।

अपनी वास्तविकता, अपनी originality कभी मत बदलिए। केवल दूसरों को दिखाने या सामने वालों को रिझाने के लिए, तो भूलकर भी हमें अपनी वास्तविकता नहीं बदलनी चाहिए।

दूसरों के लिए दिखावा करके कोई फायदा नहीं, क्योंकि हर किसी को ओरिजिनल ब्रांड ही पसंद आता है। डुप्लीकेट माल लोग दिखावे के लिए भले ही खरीदें, लेकिन उन्हें स्वयं भी पता होता है कि असली सामान की वैल्यू क्या है और नकली की वैल्यू क्या है। इसीलिए नकली सामान किसी को पसंद नहीं आता।

अभी अगर हमारे सामने भी दो विकल्प आएं कि एक असली iPhone है और एक नकली iPhone है, तो आपको जो चाहिए ले लो। स्वाभाविक-सी बात है, अगर दोनों में से कोई एक पसंद करना है, तो हम असली iPhone को ही चुनेंगे।

इस तरह, हर किसी को असली चीज ही पसंद होती है। हम ऐसा निश्चय करें कि अगर किसी को पसंद करना होगा, तो वह मुझे ऐसे-का-ऐसा ही स्वीकार कर लेगा, पसंद कर लेगा। अपनी वास्तविकता पर, अपने व्यक्तित्व पर क्या हमें इतना भी भरोसा नहीं कि ओरिजिनल को हमें डुप्लीकेट से रिप्लेस करना पड़ रहा है, बदलना पड़ रहा है? हमें अपनी असलियत पर नकलियत की एक परत लगानी पड़ रही है।

हर सफलता का रहस्य आत्मविश्वास रहा हुआ है। आत्मविश्वास ही सफलता की पहली सीढ़ी है। अपनी क्षमता पर, अपनी काबिलियत पर, अपनी असलियत पर विश्वास बनाए रखें। क्योंकि आत्मविश्वास खत्म, तो क्षमता खत्म।

अहंकार में तीनों गए, धन, वैभव, और वंश;
यकीन ना आए तो देख लो रावण, कौरव और कंस!

~ अज्ञात

और यह मानकर चलिए कि नकली चीजों पर कभी विश्वास नहीं किया जा सकता। निराशा, संभावित कार्य को भी असंभव कर देती है, और निराशा

का कारण हमारी नकलियत होती है। जब हमारे नकली स्वरूप को भी लोग पसंद नहीं करते, तब हम निराश हो जाते हैं।

अपनी वास्तविकता के साथ मन लगाकर मेहनत कीजिए, और इतनी मेहनत कीजिए कि लोग हमारा नाम Facebook पर नहीं, Instagram पर नहीं, Google पर search करें।

कहते हैं कि दो लोग आगे बढ़ सकते हैं —

1. नींद को जीतने वाले।
2. निंदा को जीतने वाले।

मैंने यह सुना था कि जो लोग पानी से नहाते हैं, वह लिबास बदलते हैं, और जो पसीने से नहाते हैं, वह इतिहास बदलते हैं। जब हम वास्तव में मेहनत करते हैं, तो नींद इतनी महत्वपूर्ण रह ही नहीं जाती, और मेहनत करेंगे, तो पसीना भी बाहर निकलेगा ही।

अंततः, मेहनत में किसी प्रकार की कमी नहीं होनी चाहिए। जितनी ज्यादा मेहनत होगी, आत्मविश्वास अपने-आप बढ़ता चला जाएगा।

एक चील की औसतन उम्र लगभग 70 साल की होती है, लेकिन जब वह लगभग 40 साल का होता है, तो उसकी शिकार कर-करके जो चोंच होती है, वह पूरी तरह मुड़ जाती है। जब चोंच इस प्रकार की हो जाती है, तब वह और शिकार नहीं कर पाता। जिन पंखों की एक उड़ान से आसमान में टेक ऑफ कर जाता था, आसमान का बेताज बादशाह कहलाता था, वह पंख भारी हो जाते हैं और उसके शरीर से चिपकने लगते हैं। अब वह उड़ भी नहीं पाता। वही हाल उसके पंजों का होता है। शिकार कर-करके पूरे नाखून भी मुड़ जाते हैं। अब वह ना तो उड़ पाता है, ना शिकार कर पाता है। ऐसे में उसके पास दो विकल्प रह जाते हैं, या तो वह इन्हीं दिक्कतों के साथ रहे, बिना मेहनत किए, बिना कोशिश किए, और कुछ ही समय में इस दुनिया से विदा ले ले, या फिर अपने परेशानियों से जूझे, अपनी चुनौतियों को स्वीकार करें और उनसे लड़े।

अक्सर चील दूसरा विकल्प चुनता है। वह अपने इलाके के सबसे ऊंचे स्थान पर जैसे-तैसे अपने आप को पहुंचाता है और वहां पर पत्थरों पर अपनी चोंच को जोर-जोर से पटक-पटक कर ठोकता है और अपनी चोंच तोड़ देता है।

अपने ही पंखों को, जो उसके शरीर से चिपक रहे थे, उड़ने नहीं दे रहे थे, उनको नोच-नोच कर अलग कर देता है कि अब तो यह ऐसे भी मेरे किसी काम के नहीं रहे। अपने पंजों को भी जमीन पर, पत्थर पर घिस-घिसकर अपने मुड़े हुए नाखूनों को भी तोड़ देता है। ऐसा करना, जरा सोच कर देखिए, कहां आसान होगा? इतनी पीड़ा सहन करना आसान नहीं होता।

इस पूरी प्रक्रिया में उसे लगभग 6 महीने तक का समय लगता है और 6 महीने तक लगातार वह इस वेदना को, पीड़ा को सहन करता है। पर 6 महीने के बाद उसके पास नई चोंच, नए पंख और नए पंजे होते हैं। 6 महीने कष्ट भोगने के बाद वह एक नई चील बनकर फिर से आता है और आगे 30 साल तक और जीता है। यानी जब वह लगभग 40 साल का होता है, तब उन दो विकल्पों में से वह दूसरा विकल्प चुनता है।

वैसे ही हमारे पास भी दो विकल्प होते हैं। पहला, हम पसीना बहाएं, दूसरा कि हम आंसू बहाएं। बेहतर तो यह है कि हम मेहनत कर पसीना ही बहाएं और कामयाब बनें, क्योंकि आंसू बहा कर कामयाबी नहीं आती।

दो चीज हमारा परिचय देती हैं हमारा अध्याय जब हमारे पास कुछ ना हो और हमारा व्यवहार जब हमारे पास सब कुछ हो!

"आंसू बहाने से केवल आंखें सूजती हैं, जिंदगी नहीं सजती।" — रौनक

चील 6 महीने तक कष्ट भोगता है और 30 साल वापस आराम से जीता है। 6 महीने तक वह उस दर्द को सहता है, अधमरा सा हो जाता है, लेकिन आखिरकार नई शक्तियों के साथ, नए जोश के साथ नई शुरुआत करता है। इस तरह हमें भी अपनी खामियों पर, हमारी कमजोरियों पर काम करना चाहिए और उन्हें दूर करना चाहिए, क्योंकि हमसे बेहतर हमारी कमजोरी को कौन समझ पाएगा?

हमें एक बेहतर सुधार के लिए अपने कंफर्ट ज़ोन से बाहर आना ही पड़ेगा। कुछ पाने के लिए कुछ खोना ही पड़ेगा। इसका यह अर्थ है कि अपने आप में से बेहतर पाने के लिए हमें अपने अंदर की कमजोरी को, डर को, घमंड को खोना ही पड़ेगा। तभी हम जीवन में कुछ अच्छा, कुछ बेहतर, कुछ मन का हासिल कर सकेंगे।

"Leave leisure for desire."

हमें अपने अंदर की योग्यता को देखने की योग्यता को विकसित करना चाहिए। हमें अपने अंदर की खूबियों से, हमारी ताकत से, स्वयं को अवगत कराना चाहिए। हम हमेशा दूसरों की पहचान करने में लगे रहते हैं कि यह व्यक्ति कैसा होगा, वह क्या सोचता होगा, वह कैसा सोचता होगा, वह हमारे बारे में क्या कहता होगा, इत्यादि-इत्यादि। हमारी सारी एनालिसिस, हमारा सारा अध्ययन "उन" पर होता है, "वह" पर होता है। हमारा यही अध्ययन "मैं" पर एवं "हम" पर भी आना चाहिए।

हम जीवन भर दूसरों की पहचान करते-करते खुद से आखिर में अनजान ही रह जाते हैं। वास्तव में होना यह चाहिए कि हमें सबसे पहले स्वयं को ही जानना चाहिए, सबसे पहले खुद को समझना चाहिए। हमें स्वयं की स्वयं से मुलाकात करनी चाहिए, स्वयं के साथ वक्त बिताना चाहिए। तभी तो हम स्वयं की वास्तविक शक्ति को, पोटेंशियल को जान सकेंगे और अपनी खुद की कार्य क्षमता को पहचान सकेंगे।

जब हम स्वयं को समय देंगे, स्वयं को जानेंगे, तो ही तो हम अपनी समझ शक्ति, कल्पना शक्ति, वस्तु स्थिति, कार्य शक्ति, स्मरण शक्ति आदि, जो हमारी मानसिक शक्तियां हैं, उनको पहचान सकेंगे।

डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने कहा था —

"History has proven that those who dare to imagine the impossible are the ones who break all human limitations and by imagining impossible they change the whole world"

जो असंभव कार्य की कल्पना कर सकता है, वह व्यक्ति इंसानों की सीमाओं को लांघ जाता है। थोड़ा समय लगेगा, पर हम जितना डटकर, जूझकर अपने लक्ष्य को प्राप्त करेंगे, उतना ज्यादा हमें मंजिल का आनंद आएगा।

आप जरा इतिहास के उदाहरण देखिए। जब पत्रों का जमाना था, डाक का जमाना था, तब किसी ने सोचा कि टेलीफोन का आविष्कार किया जाए, लैंडलाइन का आविष्कार किया जाए। तब यह सभी की सोच से परे था कि दुनिया के एक कोने पर बैठकर हम दुनिया के किसी दूसरे कोने में सीधा बात कर सकेंगे। लेकिन टेलीफोन का आविष्कार हुआ और आज हम देख सकते हैं कि उस एक आविष्कार से मोबाइल फोन और फिर आज

स्मार्टफोन ने इंसानों की दुनिया को कितना बदल दिया है, कितना प्रभावित किया है।

Wright brothers का नाम तो आप सभी ने सुना होगा और उनके आविष्कार भी हम सबको पता होंगे। Wright brothers ने सोचा कि इंसान क्यों नहीं उड़ सकते, इंसान भी उड़ सकते हैं। उस जमाने में जब वह ऐसी बातें करते थे, तो कई लोगों ने उनका मजाक उड़ाया होगा। शायद किसी का विश्वास कर पाना भी उन पर मुश्किल था। पर उन्होंने अपनी इस कल्पना को, अपनी योग्यता को पहचान कर अपने सपने को आकार दिया, अपनी क्षमताओं को थोड़ा और बढ़ाया। तो आज इंसान भी पक्षियों की तरह आसमान में उड़ सकते हैं और कई हजार किलोमीटर का सफर कुछ ही घंटे में तय कर सकते हैं।

तो इन सभी प्रसंग में समानता क्या थी? समानता यह थी कि उन व्यक्तियों ने खुद की योग्यता को पहचाना, खुद को समय दिया और खुद से कहा कि बताओ, तुम्हारी बुद्धि कितनी है, तुम दूसरों से कितने अलग हो, तुम बाकियों से किस तरह से अलग हो, तुम्हारी योग्यता क्या है। और फिर स्वयं का अध्ययन करने का यह परिणाम हुआ कि उन्होंने पूरी दुनिया में यह बड़े-बड़े बदलाव लाए।

व्यक्तित्व सूर्य सा रखो ना उदय होने का अभिमान ना अस्त होने का भय!

कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि हम भी हवाई जहाज बनाने लग जाएं या हम टेलीफोन जैसे ही कोई महान आविष्कार करें, या वैज्ञानिक बन जाएं। कहने का तात्पर्य केवल इतना है कि हम अपनी योग्यता को समझें, स्वयं को समझें। हमारी जो भी काबिलियत है, जो भी खूबी है, उसका उपयोग करना सीखें। और मेरे हिसाब से तो सारी खूबियां, सारी काबिलियत extraordinary ही होती हैं, सारी काबिलियत असाधारण ही होती हैं। बस उन असाधारण योग्यताओं का उपयोग करना भी सीखना होगा।

हमारी खूबियां एक हीरे के समान होती हैं, जो बेहद मूल्यवान है, पर उसके मूल्य का भी ज्ञान होना अति आवश्यक है। जब तक यह मालूम नहीं होगा कि यह कितना महंगा है, तब तक हम उसकी कद्र उस प्रकार से नहीं कर पाएंगे, जिस प्रकार से हमें करनी चाहिए। वरना उस हीरे के हकदार को जब तक उसकी कीमत का एहसास नहीं होगा, तब तक क्या ही फायदा।

"The struggle you are facing is the test to see if you are truly committed to the life you say you want"

कोई भी कार्य करते वक्त, या अपने लक्ष्य को पाने के लिए, इस तरह की मानसिकता का, इस विचार का होना अति आवश्यक है। जो मुंह में चांदी का चम्मच लिए हुए पैदा होते हैं, उसे सफलता नहीं कही जाती। सफलता के लिए मेहनत भी खुद करनी पड़ती है और चम्मच भी खुद ही बनाना पड़ता है।

जागना भी स्वयं को पड़ता है, चलना भी स्वयं को पड़ता है। मूल्यवान वस्तुएं इतनी आसानी से थोड़ी मिल जाती हैं। मोती बनना होता है, तो पानी को पूरी प्रक्रिया से गुजरना ही पड़ता है। अब अगर सीप में रही हुई पानी की बूंद यह सोचे कि आखिर क्यों मैं सीप में बंद रहकर इतना इंतजार करूं, तो क्या वह कभी मोती बन पाएगी? बिल्कुल नहीं।

यह हमारे और हमारे लक्ष्य के बीच का जो अंतर है, जो मेहनत है, वह कुछ और नहीं बल्कि वह इम्तिहान है, वह परीक्षा है, जो यह निर्णय करेगी कि हम उस लक्ष्य के लायक हैं या नहीं। और अगर लायक हैं, तो हमें अपनी लायकी से उस लक्ष्य के प्रति हमारी प्रतिबद्धता को सिद्ध करना होगा, हमारी लायकी को सिद्ध करना होगा।

सारी परिस्थितियों में हमारी मानसिकता तथा मुश्किलों में हमारी सहनशीलता, डटकर सफर का आनंद लेना ही हमारा जवाब होना चाहिए, हमारा उत्तर होना चाहिए। केवल सोचते रहने से ख्वाहिशें पूरी नहीं हुआ करतीं। ख्वाब देखे हैं, तो मेहनत से प्रतिबद्धता भी दिखानी होगी। किसी success पर, किसी सफलता पर हमने दावा किया है, तो हमें वह दावेदारी भी दिखानी होगी और दावेदारी साबित भी करनी होगी। और उस दावेदारी के हम हकदार हैं, यह भी हमें ही बताना होगा।

हमारे पास दो विकल्प हैं, या तो हम सोते रहें और मन चाहे सपने देखते रहें, जितने देखते हैं देखते रहें, या हम नींद से जागें और अपने सपनों को वास्तविक रूप प्रदान करें, उन्हें असलियत में साकार करने का प्रयास करें।

हम बात कर रहे थे, सपनों को पूरा करना आसान तो नहीं होगा, मुश्किलें जरूर आएंगी। तो अब बात करते हैं कि उनका सामना किस तरह से किया जाए, किस तरह से अपनी मानसिकता बनाई जाए। इसको जरा समझते हैं।

कोई भी सफलता तीन चीजों की मांग करती है। अगर इन तीन बातों पर आप खरे उतरते हैं, तो सफलता अवश्य ही आपके चरण चूमेगी। और वह तीन बातें हैं —

1. प्रयास/मेहनत (Efforts)
2. प्रतिबद्धता (Commitment)
3. सब्र (Patience)

यह तीनों ही बराबरी से महत्वपूर्ण हैं। इनमें से एक में भी यदि हमसे कमी रह जाए, तो हमें हमारी मंजिल दूर लगने लगेगी।

पहला है — प्रयास। करते रहिए। कोई भी कार्य करने से ही होगा। "The best way to get something done is to start."

कोई भी कार्य शुरू करने से पहले, कोई भी बीड़ा उठाने से पहले, हमारा एक ही डर होता है और वह है असफलता का डर। पर इस डर को लांघ कर जब हम शुरुआत करते हैं, तो हम कामयाबी की उस दौड़ में शामिल हो जाते हैं, जिससे हम पहले अछूते खड़े थे।

"The only failure is when you stop trying."

कार्य के बीच में चाहे कई मुश्किलें आएं या आ रही हों, तो भी हंस कर आगे बढ़िए, मुस्कुरा कर आगे बढ़िए, क्योंकि हंसता हुआ चेहरा आपकी शान बढ़ाता है और हंस कर किया हुआ काम आपकी पहचान बढ़ाता है।

दूसरी बात होती है — प्रतिबद्धता।

"ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे, आपहु शीतल होय।" -संत कबीर

अक्सर कार्य करते वक्त हमारा मन हार सा जाता है, थक सा जाता है। उस कार्य को न जाने क्यों करने का मन ही नहीं करता, पर किए बिना आगे भी नहीं बढ़ा जा सकता। तो ऐसे में हम क्या करें? काम करना है, तो चाहे हम हंसकर करें या रोकर ही क्यों न करें, करना तो है। तो क्यों ना हम हंस कर ही सारे काम करें? अगर हमारे सामने वरदान पाने के दो विकल्प हैं — हंसने का या रोने का, तो कोई मूर्ख ही होगा जो रोने का विकल्प चुनेगा।

अब बात है हँसने की, तो पहले ही और सबसे महत्वपूर्ण बात — हँस कर, मुस्कुरा कर काम करने से हमारे कार्य का बोझ आधा हो जाता है, क्योंकि कोई भी कार्य हमें तब तक ही बोझ लगता है, जब तक उसमें हमारी मंजूरी नहीं होती, हमारी रजामंदी नहीं होती। एक बार कोई कार्य करने के लिए हमारे मन से हमें मंजूरी मिल जाए, स्वीकृति मिल जाए, तो उस कार्य को करने में भी खुद-ब-खुद आनंद आने लगता है।

दूसरी बात यह याद रखनी चाहिए कि जिस प्रकार समुद्र मंथन के वक्त भी पूरी प्रक्रिया के दौरान विष निकला था, पर अंत में अमृत भी जरूर निकला था, उसी प्रकार कामयाबी की राह पर, सफलता की राह पर हमें कितनी भी मुश्किलें आएं, अंत बेहद ही सुकून देने वाला, शांति देने वाला, खुश कर देने वाला होगा। तो हम उस सुकून को अपना मोटिवेशन बनाएं, उसे ही अपनी प्रेरणा बनाएं कि अगर आज हम ऐसी कठिनाइयों का सामना करेंगे, तो वैसा सुखद सुकून मिलेगा। अगर आज हम ज्यादा परेशानियां झेल रहे हैं, तो उस कामयाबी को पाने की खुशी भी उतनी ज्यादा ही होगी कि आखिरकार इतनी परेशानियों को झेल कर भी, अपने आप को इतना सहनशील बनाकर, मैंने अपने सपने को पूरा किया।

हम पहले ही विश्राम कर लेंगे, तो जीत के बाद वाले विश्राम को हम कैसे पा सकेंगे? और यकीन मानिए कि जो विश्राम हम काम करने के पहले कर रहे थे और जो विश्राम हम काम पूरा करने के बाद करेंगे, उन दोनों ही विश्राम में बाद वाला जो विश्राम हमें सुकून देगा, जैसी हमारी थकान मिटाएगा, वैसा पहले वाला बिल्कुल नहीं कर सकेगा।

आज भले ही चीजें हमारे अनुसार ना हों, परिस्थितियां हमारे अनुसार ना हों, हमारे पक्ष में ना हों, तो कोई बात नहीं, क्योंकि बादलों का ग्रहण तो सूर्य को भी सहन करना पड़ता है। तो फिर हम जरा सी कठिनाइयां क्यों नहीं सहन कर सकते?

हमारा मन अक्सर हमें अपने आप को सूर्य मानने से इंकार कर देता है। हमें खुद पर दुनिया भर के सेल्फ डाउट्स होते हैं, स्वयं संदेह होता है — मैं ऐसा नहीं कर पाऊंगा, मुझसे वैसा कार्य नहीं होगा, मेरे अंदर इतनी सहनशक्ति नहीं है। या हम पूर्ण अविश्वास जैसी स्थिति में चले जाते हैं कि यह तो मुझसे होगा ही नहीं, मैं तो कर ही नहीं सकता।

पर बताइए, कोई कार्य करेंगे तो वह कार्य आखिर कैसे नहीं होगा? क्योंकि शुरू करने से पहले ही हमारा मन बना हुआ है कि मेरे लिए यह कार्य संभव नहीं है। जैसे हम अगर कुछ याद करने बैठ रहे हैं, तो हमें हमारी मानसिक शक्ति पर पूरा विश्वास होना चाहिए, लेकिन अक्सर लोग केवल इसी वजह से कि "मुझे तो याद होता ही नहीं, तो प्रयास करके भी क्या फायदा", इस तरह से नकारात्मक विचार करके उस कार्य को शुरू भी करेंगे, तो भला सफलता कैसे मिलेगी?

बात केवल कुछ याद करने की नहीं है, अपितु हमारे सारे कार्यों में इस बात को समझा जा सकता है कि हमें अपनी स्वयं की शक्तियों का बोध ही नहीं होता कि मैं क्या-क्या कर सकता हूं। या यूं कहें कि जब भी हमें अपने खुद के प्रोडक्ट पर ही भरोसा नहीं होगा, तो बाकी कोई बाजार में हमारे प्रोडक्ट पर क्यों भरोसा करेगा? यह बड़ी गहराई से चिंतन करने वाली बात है।

अगर मैं अपनी काबिलियत पर भरोसा नहीं करूंगा, तो बाकी दुनिया मेरी काबिलियत पर तो उंगली उठाने को तैयार खड़ी है, मुझे यह बताने को तैयार खड़ी है कि "तुझसे नहीं होगा।" लेकिन मुझे उन्हीं लोगों को गलत साबित करना है और यह बताना है कि किस तरह से मैं अपने कार्य को सही तरीके से पूर्ण कर सकता हूं / सकती हूं।

हमारा खुद के लिए खुद का अध्ययन बेहद आवश्यक है कि हमारी बीमारियां क्या-क्या है? हमारी खूबियां क्या-क्या हैं? हमें समय-समय पर अपनी स्वस्थता का जांच करने के लिए खुद का Full Body Checkup करना चाहिए, खुद को कारण बताओ नोटिस भेजना चाहिए और यह समझना चाहिए कि कहीं हम लक्षणों को ही तो बीमारी नहीं मान रहे? और उसके पश्चात, अगर बीमारी का पता चले, तो उसका इलाज ढूंढने का प्रयास करना चाहिए। ऐसा करते रहेंगे, तो हम निरोगी रह सकेंगे, प्रसन्न रह सकेंगे।

हमारा खुद का अध्ययन क्या कहता है, वह इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि लोगों की हमारे प्रति राय सच्ची या झूठी, दोनों हो सकती है। समय, स्थिति, स्थान, कारण के अनुसार बदल भी सकती है। हम उसे नियंत्रित नहीं कर सकते, पर हमारी खुद के प्रति खुद की राय क्या है, हमारी हेल्थ रिपोर्ट सही होनी चाहिए, हमारी इच्छा शक्ति और समझ शक्ति मजबूत होनी चाहिए।

अंत में आता है सब्र, जिसकी आज के समय में सख्त जरूरत है। आज की इस भागती-दौड़ती दुनिया में कोई जरा सा भी ठहरना नहीं चाहता। सबको चाहिए कि हमारे काम जल्दी से जल्दी कैसे हो सकते हैं। जो भी मशीन/यंत्र हमारा समय बचाएंगे, उनकी कीमत भी अधिक होगी। हमें यहाँ तक कि खाना भी instant चाहिए, ट्रांसपोर्ट instant चाहिए। कहीं बस किसी प्रकार का धीमापन, रुकावट हमें पसंद नहीं।

संस्कृत का एक बेहद खूबसूरत श्लोक है —

"शनैः पन्थाः शनैः कन्था शनैः पर्वतमस्तके ।
शनैः विद्या शनैः वित्तं पञ्चैतानि शनैः शनैः ॥"

"नम्र और मीठे शब्दों में कही गई बात
पत्थरों को भी पिघला सकती है।" - महात्मा गांधी

इस जगत में सारे कार्य धीरे-धीरे अपने मुकाम तक पहुंचाते हैं। धीरे-धीरे रास्ते कट जाते हैं। धीरे-धीरे ही योगी बनने की साधना की जाती है। किसी पर्वतारोही को कोई विशाल पर्वत चढ़ना है, तो धीरे-धीरे चढ़ता है। धीरे-धीरे ही विद्या प्राप्त होती है। धीरे-धीरे ही धन की प्राप्ति होती है। और यहाँ तक कि खाना बनाने की प्रक्रिया भी धीरे-धीरे होती है। खाने को पकाने में भी समय लगता है। कुल मिलाकर इस संसार की जो भी श्रेष्ठतम क्रियाएं हैं, उन तमाम बातों में समय लगता है। वे सारे कार्य धीरे-धीरे होते जाना आवश्यक हैं, लेकिन अपने समय से होते हैं। धीरे-धीरे होते हैं। अगर इन कार्यों में हड़बड़ी की जाए, तो ज्यादातर यह कार्य बिगड़ जाया करते हैं। तो हम जब अपने सपनों को पूरा करना चाह रहे हैं, अपने लक्ष्य को हासिल करना चाह रहे हैं, तो फिर सब्र रखकर धीरे-धीरे आगे बढ़ना चाहिए।

"Slowly is the fastest way to reach where you want to be."

किसी भी कार्य को आराम से करने का अर्थ हमेशा यह नहीं होता है कि हम उस कार्य में कुशल नहीं हैं, या हम उस कार्य के लिए नहीं बने हैं। कई बार धीरे-धीरे काम करने से ही हम सबसे तेजी से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते हैं, क्योंकि जब हम धीरे-धीरे कोई काम करते हैं, तब हमारा उस कार्य के प्रति ध्यान अधिक बढ़ जाता है और हम जितनी प्रतिबद्धता से उस कार्य को समय देकर करेंगे, उतनी बखूबी वह कार्य कर सकेंगे।

इसे कुछ इस तरह से भी समझिए कि हमारी इच्छा शक्ति अगर मजबूत है, तो नियमितता आएगी। हमारे लक्ष्य को लेकर हमारी प्रतिबद्धता जरूर आएगी। पर अक्सर हम खुद को पूरी तरह मोटिवेट कर कुछ पाने की राह में बढ़ने लगते हैं। कुछ वक्त चलने के बाद हमें थकान होने लगती है। हम सोचते हैं कि जरा सा आराम कर लेते हैं, छोटा सा ब्रेक ले लेते हैं, फिर वापस से शुरू करेंगे। वह छोटा सा ब्रेक कब बड़ा हो जाता है, यह हम समझ ही नहीं पाते। या तो हमें लगता है कि हम कितना भी मेहनत कर लें, कितना भी चल लें, कहीं भी नहीं पहुंच सकेंगे।

ऐसे में यह बात हमेशा याद रखिएगा, जो मैं अब बता रहा हूं। मैंने पढ़ा था कि अगर ₹1 को हर दिन दोगुना किया जाए, एक महीने तक यानी 30 दिन तक, तो 30वें दिन वह होता है ₹53,68,70,912 और अगर ₹1 को हर दिन 15 दिनों तक दोगुना किया जाए, तो वह होता है मात्र ₹16,384 इसका मतलब साफ है — अगर हम आधे रास्ते यह सोचकर रुक गए कि हमारे चलने से कोई फायदा नहीं हो रहा, या फिर हमारी उन्नति धीमी है, या मेहनत करते-करते उस वक्त हमारे मन में अगर यह ख्याल आ गया कि कितना भी मेहनत कर लूं, कुछ नहीं होने वाला, तो आप 15 दिन में ₹16,384 रुपए में सिमट जाएंगे। लेकिन जरा और अपने आप को धक्का देकर आगे बढ़ाएंगे और पूरी लगन के साथ काम करेंगे, तो अगले ही 15 दिनों में ₹16,384 से आप ₹53,68,70,912 पर पहुंच सकते हैं।

केवल आत्मसंयम रखकर, प्रक्रिया पर भरोसा रखकर। आज रात है, तो कुछ घंटे बाद सूरज जरूर निकलेगा। गेहूं अभी चक्की में गया है, तो कुछ देर बाद हमें आटा भी जरूर मिलेगा। आज अगर बीज बोया है, तो कुछ समय बाद फल खाने को जरूर मिलेंगे। हां, इन सब काम में समय अवश्य लगेगा। पूरी प्रक्रिया अपना पूरा समय लेने के बाद ही कुछ संभव हो सकेगा।

मैं कुछ भी काम करता हूं और मुझे कोई आकर कहे कि यह मत कर, ऐसा नहीं हो सकता, तो मेरा सीधा उत्तर होता है कि नहीं होगा ना, कोई बात नहीं। वैसे भी नहीं हो रहा है, तो मेरे एक बार के प्रयास करने के बाद भी नहीं होगा, तो चलेगा, कोई फर्क नहीं पड़ेगा। लेकिन इस कार्य के हो जाने की गुंजाइश पैदा हो सकती है। मुझे पता है मैं असफल होने वाला हूं, पर मैं चाहता हूं कि कम से कम मैं एक बार कोशिश करूं। एक बार कोशिश करके, प्रयास करके असफल हो जाऊं, तो मुझे तसल्ली रहेगी।

तो कभी भी पूरी प्रक्रिया फॉलो करते-करते कहीं पर रुकने का, छोड़ने का मन करे, तो याद रखना कि ₹16,000 हो गए हैं और अब ₹53 करोड़ होने में जरा सी ही मेहनत लगेगी। पेड़ पूरी तरह बड़ा हो गया है, बस अब फल आने के मौसम का इंतजार करना है। फलों का मौसम आते ही फल-फूल लगने लगेंगे। बस उस समय के आने का इंतजार करते हुए हौसला रखना है, भरोसा रखना है अपनी मेहनत पर, अपनी लगन पर। अगर हम प्रक्रिया पूरी तरह निभा रहे हैं, तो आखिर में हमें कुछ बेहतरीन भी जरूर हासिल होगा। केवल भरोसा और नियमितता बनाए रखनी है।

हमारी सबसे बड़ी गलती ही है कि हम कुछ भी compromiseनहीं करना चाहते, give and take नहीं करना चाहते, केवल और केवल पाना चाहते हैं। पर भला यह कैसे ही संभव है? हम खुद ही एकाग्रता नहीं ला पाते और ठीकरा किस्मत पर फोड़ते हैं। हम थोड़ी सी विपत्तियां नहीं झेल पाते, तूफानों से भिड़ना नहीं चाहते, खुद से उठकर चार कदम चलना नहीं चाहते। चलते-चलते ही हमें हर थोड़े समय में आराम चाहिए। समय हम देना नहीं चाहते। खुद को कभी हारते हुए देखना नहीं चाहते। अपने आप को सोने की तरह परखना नहीं चाहते। तपकर हम अपनी अशुद्धियों को दूर नहीं करना चाहते। अपने अलावा किसी को काबिल समझना नहीं चाहते। लहरों से टकराना नहीं चाहते, और इन सब के बावजूद हम चाहते हैं कि तथाकथित सफलता हमारे माथे पर आकर तिलक करे। तो यह भला कैसे संभव है?

Speaking comes by nature and silence by understanding!

हम चाहते हैं सफलता की सीढ़ी चढ़े बिना ही सफलता की बुलंदियों का अनुभव कर सकें, तो भला कैसे संभव है? खुद से ही यह सारे प्रश्न पूछकर देखें कि क्या हम भी यही भटके हुए हैं। यही सारे प्रश्न स्वयं से करके देखिए कि कहीं मैं भी यही गलतियां तो नहीं कर रहा। या फिर अगर हमने कुछ थोड़ा-बहुत पुरुषार्थ किया भी है, तो क्या उतना पुरुषार्थ, उतनी मेहनत हमारे लक्ष्य के लिए काफी है? उत्तर हमारे अंदर ही कहीं दफन है। खोजने का प्रयास करेंगे, तो उत्तर अवश्य मिलेगा। और यह भी नहीं करना चाहते, तो भला प्रश्नों के जवाब कैसे मिलेंगे? हम प्रश्न ही नहीं करेंगे, तो जवाब कहां से मिलेंगे?

हम नहीं करेंगे, तो और कौन करेगा? और आखिर में कुछ हमसे नहीं होगा, तो भला किससे होगा? ऊपर वाले की कृपा से होगा, लेकिन मैं करूंगा तभी होगा। भगवान भी, नियति भी, प्रकृति भी, किस्मत भी केवल उनका ही साथ देते हैं, जो मेहनत करते हैं, अनवरत और अडिग रूप से अपने कार्य के प्रति समर्पित होते हैं। आखिर में सवाल आपका ही है, जवाब भी आपके पास ही है।

इस जीवन में जब तक हम कुछ देंगे नहीं, तब तक कुछ हासिल नहीं कर सकेंगे। हम बाजार में भी कोई छोटी-सी छोटी वस्तु खरीदने जाएं, तो भी हमें उसके दाम चुकाने पड़ते हैं। तो जब हम जीवन भर के लिए इतनी बड़ी सफलता मांगते हैं, तो उसके बदले हम क्या देने को तैयार हैं — इस बारे में जरा सोचिए

"Nothing is free."
"No pain, no gain."
"No risk, no reward."
"No loyalty, no love."
"No trust, no friendship."
"No discipline, no glory."
"No sacrifices, no opportunity."
"No actions, no results!!!"

और जीवन के अंत में अगर हमें स्वर्ग भी पाना है, तो पहले हमें मरना पड़ता है। तो जीते-जी हमें जो हासिल करना है, क्या वह हमें कुछ भी बिना अर्पण किए मिल सकता है? क्या यह संभव लगता है?

सवाल जरूर मेरा है, लेकिन इसका उत्तर आप स्वयं देने का प्रयास कीजिए।

If you try you risk failure but if you don't try you ensure failure

अगर हम गलती के डर से, या किसी भी नकारात्मक सोच की वजह से, कोशिश ही नहीं करेंगे, तो हम असफलता को सुनिश्चित कर लेते हैं।

हम प्रयास करेंगे, गलती करेंगे, तो हमें केवल असफल होने का डर रहेगा। कुछ संभावना होगी कि हम असफल हों; पर जब हम प्रयास ही नहीं करेंगे, तब निश्चित ही हम असफल ही रह जाएंगे।

इसे एक उदाहरण से समझते हैं।

मान लीजिए, आपने 100 मीटर की दौड़ में हिस्सा लिया। आप दौड़ना तो चालू कीजिए। जब आप दौड़ना चालू करेंगे, तो शायद आप प्रथम ना आएं, या अंतिम ही आएं; पर अगर आप दौड़े ही नहीं, तब तो आप निश्चित रूप से अंतिम ही रह गए। क्या पता, दौड़ने से आप प्रथम आ सकते थे, द्वितीय या तृतीय आ जाते; लेकिन असफलताओं के डर से आप दौड़े ही नहीं कि, “नहीं, यह मेरे से नहीं होगा।”

प्रयास करना बहुत आवश्यक है।

5.
खुद से बड़ी परछाई

कभी ऐसा हुआ है कि आपकी प्रशंसा हुई हो और आप प्रसन्न न हुए हों? शायद नहीं। जब भी हमारी प्रशंसा होती है, हम प्रसन्न जरूर होते हैं, और जब भी हमारी निंदा होती है, हम दुखी हो जाते हैं। यह स्वाभाविक है।

परंतु चिंतन का विषय यह है कि हमें प्रशंसा सुनकर अहंकार तो नहीं आ गया?

"मैंने ऐसा किया, और तो कोई कर ही नहीं सकता।"

जब **"मैं"** आने लगता है, वहां समझ जाना चाहिए कि यह अहंकार होने के लक्षण हैं।

एक समय की बात है। एक गुरु ने अपने शिष्य को बहुत ज्ञान-ध्यान दिया, उसे विद्वान बनाया।

शिष्य के मन में विचार आया कि, "मैं तो दुनिया का सबसे बड़ा ज्ञानी हो चुका हूं। गुरुजी भी मेरे सामने कुछ नहीं हैं।"

किंतु खुद को सबसे बड़ा ज्ञानी समझना ही सबसे बड़ी अज्ञानता है। शिष्य ने सोचा कि क्यों न मैं गुरुदेव की परीक्षा लेकर देखूं। गुरु को अनुत्तीर्ण सिद्ध करने के लिए वह उपाय सोचने लगा।

शिष्य ने योजना बनाई कि, "मैं अपनी मुट्ठी में एक छोटी चिड़िया को बंद कर गुरु महाराज के पास जाकर पूछूंगा कि यह चिड़िया जीवित है या मृत।"

अगले ही दिन वह अपने गुरु के पास पहुंच गया। अहंकार में व्यक्ति की सोचने-समझने की क्षमता लगभग खत्म हो जाती है। कहां वह शिष्य इतना ज्ञानी हो जाने पर भी ऐसा तुच्छ कार्य करने को तैयार हो गया।

स्वयं अपने गुरु, जिन्होंने उसे योग्य बनाया, उसे ज्ञान दिया, पढ़ाया-लिखाया, उसे उसकी क्षमता का बोध कराया, आज वही शिष्य अपने गुरु को नीचा दिखाना चाह रहा है।

शिष्य ने सोचा था कि मेरे प्रश्न के उत्तर में अगर गुरुजी कहेंगे कि यह जीवित है, तो मैं मुट्ठी में ही इस चिड़िया को दबाकर मार डालूंगा; और अगर वह कहेंगे कि यह मृत है, तो मुट्ठी खोलकर चिड़िया को उड़ा दूंगा।

अहो! अहंकार में अंधे शिष्य को न तो गुरु के मान-सम्मान का भान है और न ही वह एक निरपराध, मासूम पक्षी की हत्या करने में कोई संकोच कर रहा है।

अंततः गुरु तो गुरु होते हैं। शिष्य ने जब गुरु से प्रश्न पूछा कि, "मेरी मुट्ठी में जो चिड़िया है, वह जीवित है या मर गई?", तब गुरु ने उत्तर दिया, "हे शिष्य! इसे मारना भी तुम्हारे हाथ में है और जीवन देना भी तुम्हारे हाथ में है।"

इतना सुनने की देर थी कि शिष्य को विचार आया कि मैं यह क्या कर रहा था! अपने ही गुरु को नीचा दिखाना चाह रहा था, जिन्होंने कच्ची मिट्टी के समान एक साधारण से मनुष्य को योग्यता दी। उनकी ही परीक्षा लेना चाह रहा था। चिंतन चलने लगा। मन में गहरा पश्चाताप हुआ और गुरु के चरणों में क्षमा-याचना कर अपना प्रायश्चित किया। शिष्य का अहंकार वहीं चूर-चूर हो गया।

जब तक हमें अपनी गलतियों का बोध नहीं होगा, एहसास नहीं होगा, हमारी उन्नति भी नहीं हो सकती। और अहंकार हमें अपनी कमियां स्वीकार करने से ही रोकता है। कहते हैं ना, सुखा पेड़ और मूर्ख कभी नहीं झुकते; क्योंकि झुकता वही है, जिसमें जान होती है, और अकड़ना तो मुर्दे की पहचान होती है।

अहंकार सबसे पहले मन की कोमल भावनाओं को नष्ट कर देता है। सोचने-समझने की क्षमता को शून्य पर लाकर खड़ा कर देता है और व्यक्ति को यही सोचने पर मजबूर कर देता है कि, **"मैं ही सही हूं।"**

फिर व्यक्ति हित-अहित, सही-गलत, प्रेम, वात्सल्य — यह सब भूल जाता है। अहंकार ही अत्याचार, अनीति और नकारात्मकता को जन्म देता है, और अहंकार ही व्यक्ति के पतन का कारण बनता है।

अहंकार को प्रवेश करने के लिए ज्यादा कुछ नहीं चाहिए; सिर्फ चार तारीफें और एक-दो चापलूस ही काफी होते हैं।

सत्य केवल उन लोगों के लिए कड़वा होता है
जो लोग झूठ में रहने के आदी हो चुके हैं!

और जो हमारी सबसे बड़ी खूबी होती है, वही अहंकार के बाद हमारी सबसे बड़ी खराबी बन जाती है। अहंकार चाहे किसी का हो — पद का हो, पैसे का हो, प्रतिष्ठा का हो, ज्ञान का हो, दान का हो, या रूप का हो — हानि तो हम स्वयं की ही करते हैं।

अहंकारी व्यक्ति को भीतर ही भीतर अपनी कमजोरी, अपनी कमी, अपनी गलती पता होती है; किंतु वह उसे स्वीकार नहीं करना चाहता, क्योंकि सामने वाला उसे उसकी कमियों से अवगत करा रहा है।

और अगर हम अपनी गलतियां नहीं समझेंगे, तो आगे कैसे बढ़ेंगे?

जैसे सामने चट्टान है। कोई व्यक्ति बार-बार उससे टकरा रहा है। सामने चट्टान दिख रही है, पर वह स्वीकार नहीं कर रहा कि चट्टान उसका रास्ता रोक रही है। आसपास खड़े लोग उसे समझा भी रहे हैं कि तुम अपना रास्ता बदल लो, लेकिन वह अपनी कमी को नजरअंदाज कर रहा है कि, **"मैं चट्टान को टक्कर मारकर तोड़ दूंगा।"** बिल्कुल यही स्थिति किसी भी अहंकार से ग्रस्त व्यक्ति की होती है।

अपने आप को श्रेष्ठ मानना और अपने आप को ही श्रेष्ठ मानने में अंतर रहा हुआ है। फर्क मामूली सा है, साधारण सा है; लेकिन इसे समझने के लिए असाधारण बुद्धि और साधारण व्यक्तित्व की आवश्यकता होती है।

मानी के सब शत्रु बनते, कोई मित्र न बनता है।
कोई उसकी बात न माने, साथ न कोई देता है।

फिर भी कहता, “हम हैं चौड़े”,
सकरी रे बाजार की।

मान लीजिए, किसी व्यक्ति ने अच्छा-खासा ज्ञान प्राप्त कर लिया और सोचने लगा कि, "मैंने बहुत ज्ञान प्राप्त कर लिया है। मैं तो विश्व का सबसे ज्ञानी व्यक्ति हूं।"

वहीं उसकी उन्नति की गाड़ी रुक जाएगी। ज्ञान तो अनंत है। विचार करें कि हमें जितना ज्ञान है, वह तो चिड़िया की चोंच में जितना पानी आएगा, उतना सा ही है।

मैं अगर इतने से ही ज्ञान में फूल जाऊंगा, तो सागर की ओर कैसे बढ़ूंगा?

आखिर में निर्णय हमारे हाथ में है कि हमें उन दो-तीन बूंदों को सागर मान लेना है, या वास्तव में जो सर्वश्रेष्ठ है, खजाना है, बहुमूल्य है, सागर के समान अनंत है, उसे प्राप्त करना है।

अहंकार से अनदेखी प्रारंभ होती है। किसी भी व्यक्ति या वस्तु की महत्ता क्या है एवं कितनी है, इस बात की अनदेखी शुरू होती है।

बड़े, छोटों की अनदेखी करने लगते हैं तथा छोटे, बड़ों की अनदेखी करनी शुरू कर देते हैं। परिवार की बात हो या समाज की, व्यवस्था बिगड़ने का सबसे बड़ा कारण यही रहा हुआ है।

परिवार में छोटा भाई बड़े भाई से राम बनने की अपेक्षा करता है, लेकिन स्वयं लक्ष्मण या भरत के समान बनने को तैयार नहीं है। बड़ा भाई चाहता है कि छोटा भाई लक्ष्मण बने, परंतु खुद राम बनने को तैयार नहीं।

सास बहू से उम्मीद रखती है कि बहू उसे मां के समान समझे, लेकिन खुद बहू को अपनी बेटी के समान मानने को तैयार नहीं। वहीं बहू चाहती है कि सास उसे बेटी माने, लेकिन सास को अपनी मां के समान समझने को तैयार नहीं होती।

पति चाहता है कि पत्नी सीता बने, परंतु स्वयं राम नहीं बन सकता। वहीं पत्नी चाहती है कि पति राम बने, परंतु स्वयं सीता नहीं बन सकती।

हर कोई यहां अपने अनुसार दुनिया को बदलना चाहता है, क्योंकि उसका स्वयं का अहंकार उसे अपने आप को नीचा समझकर, अपनी गलती मानकर, अपने आप में परिवर्तन लाने को तैयार ही नहीं होने देता।

समझ में हम चाहते हैं कि हमें first preference मिले, पर यह नहीं समझते कि हम prefer करने लायक हैं भी या नहीं।

हमारा मन हमें थोड़ा-सा झुककर अपने आप में परिवर्तन लाने की आज्ञा ही नहीं देता। उन्नति पाने के लिए, झुकना; फलने-फूलने के लिए, आगे बढ़ने के लिए नम्र बनना बेहद आवश्यक है।

क्योंकि पेड़ की जिन टहनियों पर फल नहीं लगते, वे झुक भी नहीं पातीं; और जिन पर रसीले, मीठे फल लगते हैं, वे अवश्य ही झुकती हैं। और आखिर में पत्थर भी उन्हें ही खाने पड़ते हैं, जिन पर फल लगे होते हैं। अतः उनसे कुछ प्राप्त हो सकता है, लाभ हो सकता है; अर्थात वे कुछ विशेष होते हैं, खास होते हैं।

तो अब कभी आलोचना के पत्थर हम पर उछाले भी जाएं, तो सकारात्मकता से उनका सामना करना एवं ऐसा विचार करना चाहिए कि नम्रता से बड़ा कोई शस्त्र नहीं है। नम्रता से ही उनका निवारण करना चाहिए।

नम्रता के बिना किसी भी व्यक्ति का व्यक्तित्व ठीक उसी प्रकार अधूरा है, जैसे बिना पंखों के पक्षी, बिना तारों की रात, और बिना खिड़कियों का घर।

भीष्म पितामह के नम्र व्यवहार मात्र ने उन्हें परशुराम जैसे महान योद्धा, जो उनके गुरु थे, उनसे युद्ध में विजय दिलाई थी।

गुरु ने कहा, "मुझसे युद्ध करो।" आज्ञारूप समझकर पितामह भीष्म उनसे युद्ध करने आ गए।

गुरु ने कहा, "या तो मेरा वध करो, या लौट जाओ।"

तो उनका जवाब था, "हे गुरुदेव! मैं तो आपकी आज्ञा पालन हेतु युद्ध कर रहा था। अगर अब आप ही आज्ञा दे रहे हैं कि मैं लौट जाऊं, तो मैं लौट जाता हूं।"

क्या अद्‌भुत रहा होगा उनका विनय, जिसमें अहंकार का नामो-निशान भी नजर नहीं आता। नहीं तो क्या आवश्यकता थी भीष्म को लौट जाने की, जब उनके पास अपने विपक्ष में खड़े, जो उस वक्त के सर्वश्रेष्ठ योद्धा थे, ऐसे योद्धा को रणभूमि से हटाने का अवसर था?

बड़े-बड़े राजा-महाराजा मिलकर भी जिनका सामना करने में असमर्थ थे, ऐसे योद्धा के सामने भी उन्होंने विनम्रता को चुना। और तब, जब उनके हाथ में विकल्प था कि युद्धभूमि में सामने खड़े अपने स्वयं के प्रतिद्वंद्वी, जो उस समय परशुराम जी थे, उनका वध कर दें और विजय का मुकुट अपने सिर पर पहन लें।

लेकिन जब परशुराम जी ने उन्हें विकल्प दिया, तो वध करने वाला विकल्प तो उन्होंने मानो सुना ही नहीं, क्योंकि सामने शत्रु नहीं, उनके परम उपकारी गुरुदेव खड़े थे।

उनका अपमान करने की तो वह सोच भी नहीं सकते थे; वध करना तो दूर की बात थी। यही नम्रता थी, जिसने परशुराम जी को भी भीष्म पितामह के आगे विवश कर दिया।

हनुमान जी जब सीता माता की खोज में लंका पहुंचे, अशोक वाटिका में सीता माता ने पूछा, "तुम कौन?"

तब हनुमान जी ने यह नहीं कहा कि, "मैं महाबली हूं, जिसे लोग शिव का अंश मानते हैं, पवनदेव का पुत्र मानते हैं, जिसने बचपन में ही सूर्य को अपना ग्रास बना लिया था। मैं महान, श्रेष्ठ हनुमान हूं।"

बल्कि अपना परिचय देते हुए भी हनुमान जी ने कहा कि, "मैं श्रीराम का दास हूं।"

मान लीजिए, आपने किसी कार्य में मुख्य भूमिका निभाई। उसकी सफलता का श्रेय आपको मिलना चाहिए था, लेकिन कदाचित किसी कारणवश आपको श्रेय न मिला और किसी दूसरे को उस कार्य का श्रेय मिल गया। तब हमारी मनोदशा कैसी होगी?

यहां तो हनुमान जी खुद होकर श्रेय छोड़ रहे हैं, खुद होकर अपना यश छोड़ रहे हैं।

वह चाहते तो अपनी तारीफों के पुल बांध सकते थे कि, "मैंने कई योजन लंबे समुद्र को अकेले एक उड़ान में पार कर लिया। रास्ते में अभी-अभी मैंने कितने महान मायावी दानवों का वध किया।"

लेकिन नहीं, उन्होंने अपनी स्वयं की महिमा का बखान नहीं किया। और नहीं किया, तो आज भी सबके पूजनीय बन गए।

हमें इन महापुरुषों के जीवन से शिक्षाएं प्राप्त करनी चाहिए।

आज तो हम विनय का भी अहंकार कर बैठते हैं कि, "मेरे जैसा कोई विनम्र नहीं है। मैं कितना विनम्र हूं।"

जीवन में अगर विनय न हो और व्यक्ति घमंड में रहे, तो उसका क्या प्रतिफल होता है, उसके उदाहरण के लिए रावण और कंस का जीवन पर्याप्त है।

दोनों के ही पास बल की, ऐश्वर्य की, कीर्ति की, धन की और ज्ञान की कोई कमी नहीं थी; परंतु अति-इच्छा और अति-आत्मविश्वास की वजह से दोनों की नैया डूब गई।

दोनों का ही वध हुआ।

एक बार की बात है। एक फूल खिलकर बड़ा हुआ, सुंदर हो गया। कई भंवरे और तितलियां उसके इर्द-गिर्द घूमने लगीं। फूल को बड़ा आनंद आने लगा। उसे लगने लगा, "लोग मुझे बहुत पूछते हैं, मेरी सुंदरता की वजह से मेरे चक्कर लगाते रहते हैं।"

लेकिन कुछ ही समय बाद एक तेज हवा का झोंका आया और वह टूटकर जमीन पर गिर गया। कुछ ही समय में वह पूरी तरह धूल में मिल गया। जो लोग पहले उस फूल की तारीफ करते नहीं थक रहे थे कि, "देखो, कितना सुंदर फूल है! इसके रंग कितने खिलकर आए हैं!", अब वही अपने पैरों से उसे रौंदकर आगे बढ़ते जा रहे हैं।

वैसे ही मैंने एक फव्वारे को देखा। उसका पानी सरसराता हुआ ऊपर जा रहा था, लेकिन कुछ समय में वही पानी, जो सरसराहट करता हुआ ऊपर जा रहा था, वापस नीचे गिर जाता है।

यही नहीं, सूरज को भी बड़ा घमंड था कि, "मैं बादशाह हूं, तेजस्वी हूं, चमकीला हूं। प्रकाश मैं हूं। कोई भी सामने आ जाए, उसे भस्म करने की क्षमता रखता हूं।"

पर मैंने पाया कि शाम हुई नहीं कि वह सूरज भी अस्त हो गया।

इस जगत में इतने उदाहरण मिलने पर समझ लेना चाहिए कि बड़े से बड़े, महान से महान सृजन का भी घमंड नहीं रहा, तो हमारी क्या हस्ती है?

हर वर्ष कितनी ही नामी, बड़ी-बड़ी हस्तियों का निधन हो जाता है। मृत्यु के कुछ दिन बाद तक उन्हें याद रखा जाता है। ज्यादा हो, तो प्रतिवर्ष उनकी पुण्यतिथि मना ली जाती है; फिर लोग उन्हें भूल जाते हैं। और फिर हम तो

सामान्य आदमी हैं। हमारी कहानी तो जब तक हम जिंदा हैं, तब तक की है। उसके बाद तो दो दिन, ढाई दिन भी नहीं है।

तो आखिर घमंड करके हम क्या कर लेंगे?

इतने से समय के लिए अहंकार करके क्या लाभ? छोटी-सी जिंदगी है, सभी को साथ लेकर चलें। क्योंकि बड़ा वह नहीं होता, जो अपना बड़प्पन दिखाए; बड़ा वह होता है, जो अपने पास बैठे व्यक्ति को छोटा महसूस न होने दे।

एक बार एक गांव का व्यक्ति, अपने शहर वाले मित्र के आमंत्रण पर, उससे मिलने शहर जाने को तैयार हुआ। शहर पहुंचते ही उसकी आंखें चौंधियाने लगीं। ऊंची-ऊंची इमारतें, वहां के लोगों का रहन-सहन और ठाट-बाट देखकर वह हैरान रह गया।

जैसे-तैसे वह अपने मित्र के घर पहुंचा। शहर वाले मित्र ने उसका बड़े ही अच्छे ढंग से स्वागत-सत्कार किया। एक बड़े, साफ-सुथरे कमरे में उसे ठहराया।

रात में गांव वाला मित्र किताब पढ़ रहा था। शहर वाले मित्र ने उसे देखकर कहा, **"जब सोना हो, तब बत्ती बुझा लेना।"**

काफी रात होने पर शहर वाला मित्र तो सोने चला गया, पर गांव वाला मित्र अभी भी किताब पढ़ रहा था। पढ़ने के बाद वह बल्ब के पास आया। बल्ब थोड़ा ऊंचाई पर था, तो वह कुर्सी पर चढ़कर बल्ब को फूंक मारने लगा; मगर बल्ब तो बुझा ही नहीं।

बीस-पच्चीस बार फूंक मारने पर भी जब बल्ब नहीं बुझा, तो उसे गुस्सा आ गया। उसने अपनी चप्पल उठाई और बल्ब पर दे मारी। बल्ब चकनाचूर हो गया।

इतना होने के बाद वह व्यक्ति कहने लगा, "लातों के भूत बातों से नहीं मानते।"

बिल्कुल इसी तरह की दशा अहंकारी लोगों की, मूर्ख लोगों की होती है। वे चाहे जितना भी बड़ा, कितना ही बेवकूफी भरा काम कर लें, उन्हें वह काम बड़े दिमाग वाला ही लगता है।

वे ऐसा समझते हैं कि, "हमने तो बहुत ही सराहनीय कार्य किया है।"

वे अपनी मूर्खता में भी अपनी होशियारी समझते हैं। जिन बातों से उनके अहंकार को ठेस पहुंचे, वैसी बातें तो उनको जरा-सी भी नहीं सुहातीं। उनका मत रहता है कि उन्होंने जो किया, वह सही किया।

किसी कार्य को करने पर कोई उसकी प्रशंसा करे या न करे, वे स्वयं ही मुंह-मियां मिट्ठू बनकर सारे नगर में ढिंढोरा पीटने लग जाएंगे। कुल मिलाकर, अपनी गलतियों को भी उपलब्धियां बताकर पेश करने लगते हैं।

और ऐसे व्यक्ति कभी भी सम्मान नहीं पाते, कभी आगे नहीं बढ़ पाते; क्योंकि वे अपनी सारी शक्ति अपने आप को सही सिद्ध करने में ही लगा देते हैं।

जो व्यक्ति अपनी गलती सहर्ष स्वीकार कर लेता है, समझ लेना कि वह बहुत ही सुलझा हुआ है; क्योंकि अपनी गलती के लिए उसे दूसरों पर ठीकरा फोड़ना नहीं आता।

उसमें अहं कम होता है, इसलिए अपनी गलती मानने में उसे शर्म नहीं आती।

जितना जल्दी हो सके, हमें अपनी गलती मान लेनी चाहिए; क्योंकि सफर जितना लंबा होता है, वापसी भी उतनी ही कठिन हो जाती है। और वास्तव में वही गलतियां सबसे ज्यादा दर्द देती हैं, जिनके लिए माफी मांगने का समय निकल चुका होता है।

अंततः अपने अहंकार को कम कर, उसे अपने नियंत्रण में रखते हुए ही कोई भी कदम उठाना चाहिए।

सबसे पहले हमारे मन में लोभ प्रवेश करता है। लालच — पैसा पाने का लालच, यह मिल जाए, वह मिल जाए; हर चीज में असंतोष।

10 लाख की कमाई है, तो 20 लाख की होनी चाहिए। एक करोड़ की कमाई है, तो 2 करोड़ की लालसा। और इस लालच की पूर्ति के लिए हम माया करते हैं, छल करते हैं। कपट की भावना हमारे भीतर प्रवेश करती है।

जब एक बार हम धोखाधड़ी करने में, कपट करने में सफल हो जाते हैं, तो भीतर में अहंकार प्रवेश करता है कि, "देखो, कैसे मैंने उंगली टेढ़ी करके घी निकाल लिया। मुझसे बुद्धिमान तो कोई है ही नहीं।"

और जरा-सा भी हमारे इस अहंकार को ठेस पहुंच जाए, या कोई हमारी बंद हो चुकी आंखों को खोलने का प्रयास करे, तो हमारी रगों में बहता खून उबलने लगता है; अर्थात हमें क्रोध आता है।

जो व्यक्ति हमारे अहंकार को ठेस पहुंचाता है, फिर वही व्यक्ति हमें बेकार, खराब और नालायक लगने लगता है। जो व्यक्ति अपने विचारों पर नियंत्रण कर पाता है कि वह क्या सोच रहा है, क्या समझ रहा है, वही वास्तव में परिपक्व है।

अपने कार्यों में नियंत्रण लाना आसान है। आप कुछ मत कीजिए, आपके कार्य नियंत्रित हो जाएंगे। वचनों पर नियंत्रण लाना भी काफी हद तक आसान है। आप कुछ मत बोलिए, आपके वचन आपके नियंत्रण में रहेंगे।

लेकिन मन के विचारों को रोकना बहुत कठिन है।

अहंकार हमारे मन की ही तो उपज है। मन में यह विचार न आए कि, **"मैं ही सब कुछ हूं,"** तो वचनों से जताने की भी आवश्यकता न हो। अर्थात अपने ही मुख से यह सिद्ध करने की, सबको बताने की आवश्यकता ही न हो।

मन में इस बात की तड़प ही न हो। और अंत में, अपनी बोली हुई बात को सही साबित करने के लिए, माया-पूर्ण अहंकार के वशीभूत होकर कोई गलत कार्य करने की आवश्यकता ही न पड़े।

आज तक हम अगर दुखी रहे हैं या दुखी हुए हैं तो केवल और केवल अपने भीतरी कर्म से जैसे कंकर से बनी सड़क पर चलना आसान है पर अगर जूते के अंदर एक कंकड़ भी आ जाए तो चलना मुश्किल हो जाता है दुभर हो जाता है "जीवन में किसी का घमंड मत करना क्योंकि तकदीर बदलती रहती है शीशा तो वही रहता है बस तस्वीर बदलती रहती है"

घमंड किसी का भी हो सकता है।

"मैं विद्वान हूं, मैं बहुत समझदार हूं, मैं बहुत पैसे वाला हूं, मैं होशियार हूं, मैं बहुत मिलनसार हूं, मैं बहुत अच्छा गायक हूं, मैं बहुत अच्छा वक्ता हूं, मैं बहुत अच्छा लिखता हूं।"

अरे, **कुछ लोगों को तो इस बात का घमंड है कि उन्हें किसी बात का घमंड नहीं है।**

कहेंगे कि, **"मेरे पास पैसा बहुत है, प्रॉपर्टी बहुत है, फिर भी मैं कभी नहीं जताता कि मेरे पास इतना सब कुछ है।"**

अरे भैया, यह कहकर तो तुमने जता ही दिया।

अगर हमें अपनी लघुता, अपने छोटेपन का बोध हो जाए, तो हमारा अहंकार भी क्षण मात्र में खत्म हो जाए।

शेर तब तक ही दहाड़ता है, जब तक उसे कोई सवा शेर न मिल जाए।

अहंकारी के लक्षण क्या-क्या हैं?

तो सबसे बड़ा लक्षण यही है कि अहंकारी व्यक्ति सबको अपने नियंत्रण में रखना चाहता है। सदैव अपनी ही चलाना चाहता है। अपने फरमान वैसे के वैसे ही पूरे करवाना चाहता है।

"मैंने उसे पांच कदम चलने को कहा था, वह छह कैसे चल दिया?" "मैंने ₹10 खर्च करने को कहा था, उसने ₹11 कैसे खर्च कर दिए?"

बात यहां सिर्फ पैसे खर्च करने की नहीं है, अपितु बात यह है कि मैंने जैसा करने को कहा था, सामने वाले ने हू-ब-हू वैसा ही नहीं किया। कुछ उन्नीस-बीस हो गया।

अपनी आज्ञा मनवाने में ऐसे व्यक्ति कुछ इस तरह से आंख होते हुए भी अंधे होते हैं। उन्हें केवल इतना ही समझ आता है कि, "मैंने जैसा बोला था, वैसा नहीं हुआ।"

और अगर उनकी आज्ञा से उन्नीस-बीस भी हो जाए, तो उसे सहन करना उनके लिए बेहद कठिन हो जाता है; क्योंकि उनमें स्वीकार करने की क्षमता ही नहीं होती। स्वीकार करने का गुण समाप्त हो चुका होता है।

जब तक **"मैं", "मेरापन" और "बड़प्पन"** में रहेंगे, और बाकी सब **"छोटेपन"** में, तब तक अहंकार कहीं न कहीं पांव जमाए हुए रहेगा।

असल में होना तो यह चाहिए कि **"मैं"** और **"मेरापन"** हमेशा सिर झुकाए, स्वीकार करने की अवस्था में, छोटेपन में रहकर, लघुता में रहें।

यकीन मानिए, लघुता में जो आनंद है, वह अपना बड़प्पन जताने में जरा सा भी नहीं है।

लघुता से ही प्रभुता आती है।
इस बात को हमेशा याद रखें।

"सर्वं क्षणिकम्" के बारे में बात कर रहे थे। जरा इस सिद्धांत को यहां पर पुनः समझें, तो हमें एहसास होगा कि आज जिस वस्तु पर, शक्ति पर, स्थिति पर हम इतना इतराते हैं, वह आज है; हो सकता है कल वह वैसी न रहे।

यह जो हमारा घमंड है, रौब है, वह कुछ क्षण मात्र का है।

मान लीजिए कि हमें कहा जाए कि, "आपको एक दिन का प्रधानमंत्री बनाया जाता है और अगले ही दिन आपको एक जेल में जीवन भर के लिए बंद कर दिया जाएगा। तरह-तरह की यातनाएं आपको दी जाएंगी।"

तो क्या हमें प्रधानमंत्री बनना मंजूर होगा?

शायद नहीं।

क्योंकि हम इस बात से पूर्ण रूप से परिचित हैं कि आज भले ही हम एक दिन की खुशी मना लें कि हम प्रधानमंत्री बन गए, लेकिन उस एक दिन की खुशी के बाद जीवन भर की कैद होने वाली है।

अर्थात प्रधानमंत्री बनने का आनंद, जीवन भर की गुलामी के सामने क्षणिक है।

तो अगर हम प्रधानमंत्री बन भी गए, तो किस बात का घमंड रहेगा? किस बात पर हम इतना इतराएंगे?

एक बार यदि हम यह समझ जाएं कि हमेशा दूसरे ही गलती नहीं करते, कई बार हम भी गलतियां करते हैं, तो आधी समस्याएं यहीं समाप्त हो जाएं। आज सबसे बड़ी समस्या तो यही है कि हम स्वयं अपनी गलतियां नहीं देख पाते, या यूं कहें कि देखना ही नहीं चाहते। और कोई दूसरा अगर हमारी गलतियां बताए, तो हम सुनना नहीं चाहते।

जब तक हमें अपनी कमजोरी या गलती का बोध नहीं होगा, तब तक हम अपने अंदर सुधार भी कैसे ला पाएंगे?

किसी क्रिकेटर को स्पिन गेंदबाजी का सामना कैसे करना है, यह समझ नहीं आ रहा। वह बार-बार स्पिन गेंदबाजी में आउट हो जाता है। कोच बार-बार उसे सिखाने का प्रयास कर रहे हैं, लेकिन वह समझता है कि, **"नहीं, मैं तो अच्छा ही खेल रहा हूं। कोच तो हमेशा मुझमें कमियां खोजते रहते हैं।"**

तो क्या आगे चलकर वह एक दिग्गज खिलाड़ी बन सकेगा? क्या वह कोई नया कीर्तिमान बनाने में सफल हो सकेगा?

शायद नहीं।

यह तो स्पष्ट है कि कुछ समय बाद टीम मैनेजमेंट भी उसे बाहर का रास्ता दिखा देगी कि, "भाई, पहले अच्छे से खेलना सीखो। अपनी खामियों पर जरा काम करो, फिर खेलने आना।"

यह बात बिल्कुल स्पष्ट है।

उसी प्रकार, हम जब तक अपनी स्वयं की कमियों को नजरअंदाज करते जाएंगे, तब तक सही मायने में सफल नहीं हो सकेंगे।

क्रोध के समय थोड़ा रुक जाइए, और गलती के समय थोड़ा झुक जाइए।

हम दूसरों को उनकी गलतियां बताने में जितना आनंद लेते हैं, जितना रस लेते हैं, उतना ही आनंद दूसरों के गुणों को, दूसरों की अच्छाइयों को बताने में लेना चाहिए।

एक बार दूसरों की निंदा, चुगली करना और उनकी कमियां निकालना एक तरफ कर, नए नजरिए से दुनिया की खुशियों में, अच्छाइयों में डूबकर तो देखिए कि यह दुनिया और यहां के लोग कितने हसीन हैं।

कई बार लोग कहते हैं, “इतिहास क्यों पढ़ना है? जो हो गया, सो हो गया। कब कौन मरा, कब किसने किस पर आक्रमण किया, किसने कौन-सा युद्ध जीता — यह सब जानकर हम क्या करेंगे?”

निश्चित ही, पहली नजर में यह तर्क बिल्कुल सही प्रतीत होता है। किंतु जब हम इस पर थोड़ा-सा विचार करते हैं, तब हमें समझ में आता है कि इतिहास पढ़ने का उद्देश्य कुछ और ही है।

इसका उद्देश्य यह है कि पहले के लोगों ने जो गलतियां कीं, या हमारे पूर्वजों से जो गलतियां हुई हों, उन्हें हम न दोहराएं।

बेशक, अगर कोई अपनी गलती को दोहराता है, तो वह मूर्ख है; मगर जो व्यक्ति गलती करता है, उसका प्रायश्चित करता है, उसके लिए क्षमा मांगता है, और फिर कुछ समय बाद पुनः उसी गलती को दोहराता है, तो वह महामूर्ख की श्रेणी में आ जाता है।

जैसे किसी व्यक्ति को शराब पीने की आदत थी। परिवार में बहुत झगड़े होने लगे, बात बहुत बिगड़ गई। यह सब देखकर उसने मन बनाया कि, **"मैं शराब पीना बंद कर दूंगा।"** और उसने शराब पीना बंद कर दिया।

उसकी घर-गृहस्थी पटरी पर लौटने लगी।

लेकिन कुछ समय बाद उसने फिर से शराब पीना शुरू कर दिया। तो आखिर में वह निंदा का योग्य ही रह जाएगा, क्योंकि उसने सही और गलत — दोनों पक्षों को महसूस किया, परंतु उनमें फर्क नहीं कर सका।

अपने स्वयं के लिए क्या श्रेयस्कर होगा, यह समझ पाने में वह सफल नहीं हो पाया। या यूं कहें कि बेहतर क्या है, यह समझते हुए भी उसने गलत पक्ष को चुना।

इसी वजह से वह महामूर्ख ही कहलाएगा।

आज तक हमें अपने अहंकार के आगे झुकना नहीं है, अपनी गलतियां देखनी नहीं हैं। और हमें यह भी मालूम है कि अपनी गलतियों को न मानकर हम कितनी बड़ी भूल कर रहे हैं।

यह जानते हुए भी अगर हम अपने अहंकार का त्याग नहीं कर पा रहे, तो अवश्य ही हम महामूर्ख कहलाएंगे।

हमें तो उनसे प्रेरणा लेनी चाहिए। भरत जी को सम्मान की, सुख की कोई कमी नहीं थी। पूरे रामायण के घटनाक्रम में उनकी कोई गलती भी नहीं थी, कोई हस्तक्षेप तक नहीं था, कोई दोष नहीं था; फिर भी वे प्रायश्चित कर रहे हैं।

गलती तो कैकेयी की थी, मंथरा की थी; लेकिन जंगल में जाकर श्रीराम के आगे उनकी आंखों से आंसू थम नहीं रहे। बेचैन मन लिए वे गिड़गिड़ा रहे हैं कि, **"भैया, वापस अयोध्या चलो।"**

वे कहते हैं, "भैया, आपको वनवास मिला, मेरे कारण पिताजी की मृत्यु हो गई। मेरे कारण, जिसके सिर पर अयोध्या का राजमुकुट होना चाहिए था, उसके सिर पर जटाजूट है।"

पश्चाताप का स्तर देखिए।

और एक हम हैं, जो गलती होने पर भी उस पर पर्दा डालते हैं। माफी मांगना, पश्चाताप करना तो दूर की बात है; ऊपर से अपनी गलती को लेकर तर्क-वितर्क करने पहुंच जाते हैं।

एक सामान्य और एक असामान्य व्यक्ति में केवल यही अंतर रहा हुआ है कि सामान्य व्यक्ति केवल एक व्यक्ति के बारे में सोचता है, और वह व्यक्ति है — **वह स्वयं।**

जबकि असामान्य प्रतिभा, असामान्य क्षमता और असाधारण व्यक्तित्व वाला व्यक्ति सबके बारे में सोचता है। सिर्फ अपने लिए मांगना तो भिखारीपन है।

जो व्यक्ति आज केवल अपने लिए सुख, चैन, धन और संपत्ति मांग रहा है, याद रखिए कि एक दिन अकेले ही उसे ब्याज सहित यह स्वार्थीपन चुकाना पड़ेगा। भले ही मांगने पर आज उसे वह सब मिल भी जाए, परंतु आगे उसका मूल्य चुकाना ही पड़ेगा।

कभी आपने सोचा है, आखिर क्यों हमें आज तक महापुरुषों के बारे में बताया जाता है? आखिर क्यों उन कुछ चुनिंदा लोगों की आज भी मिसालें दी जाती हैं?

इसलिए, ताकि हम यह समझ सकें कि उनको जानकर, उनके जीवन को समझकर, हम में और हमारे व्यक्तित्व में कैसे-कैसे बदलाव आने चाहिए।

फुटबॉल और फ्लूट, यानी बांसुरी — यह दोनों ही हवा से काम करते हैं। केवल फर्क इतना है कि बांसुरी हवा को मधुर संगीत में बदल देती है, तो वह सबका दिल जीत लेती है; और फुटबॉल हवा को अपने अंदर रख लेता है, तो उसे लोगों की लातें और ठोकरें खानी पड़ती हैं।

ऐसा फर्क इसलिए है क्योंकि जीवन मिलना भाग्य की बात है, मृत्यु होना समय की बात है, लेकिन मृत्यु के बाद भी लोगों के दिलों में जीवित रहना — यह कर्मों की बात है।

वास्तव में हमारी गलतियां ही हमें महान बनाती हैं। हमारी एक-एक गलती, हमारी हर एक भूल, जो हमें सीख देती है, वह हर एक सीख हमें ठीक उसी प्रकार तराशती है, जिस प्रकार एक जौहरी हीरे को तराशता है।

तराशते वक्त वह हीरे को कितना कष्ट देता है, लेकिन अंत में उसी हीरे का मूल्य बढ़ा देता है।

अर्थात अपना मूल्य बढ़ाने के लिए सोने को तपना पड़ता है, हीरे को छेनी-हथौड़ी की मार सहनी पड़ती है। तो हमें क्या लगता है? किसी व्यक्ति को मूल्यवान बनने के लिए थोड़ी-सी भी ठोकर नहीं खानी पड़ेगी?

जो ऐसा सोचते हैं कि बिना संघर्ष के, बिना समझौते के, बिना गलतियों के, बिना सहनशीलता के और बिना स्वीकार्यता के उनका मूल्य बढ़ जाएगा, वे वास्तव में भ्रम में जी रहे हैं।

जो अपनी असफलताओं से डरकर, लोगों के तानों से डरकर, अपनी कमियों को और अपनी गलतियों को स्वीकार नहीं कर पाते, ऐसे लोग वास्तव में मूर्ख हैं।

ये वे लोग हैं, जिन्हें सफलता का वास्तविक अर्थ समझ नहीं आया।

फिर वही बात दोहराता हूं कि **गलतियां ही व्यक्ति को महान बनाती हैं।**

गलतियां तो सफलता का आभूषण होती हैं।

सारी गलतियां और खामियां, जिन-जिन से हमें कुछ-न-कुछ सीखने को मिलता है, हमें सफल बनाने में उनका खास योगदान होता है। वे उस सफलता को और भी खूबसूरत बना देती हैं।

जीवन में कोई भी घटना बिना उद्देश्य के नहीं होती; यहां तक कि हमारी अपनी गलतियां भी नहीं।

कहते हैं कि गलतियां पीठ की तरह होती हैं — अपनी के अलावा बाकी सबकी नजर आती हैं। लेकिन हमारा प्रयास होना चाहिए कि बाकियों की छोड़, हम सबसे पहले अपनी ही नुक्स निकालें, अपनी ही गलतियां ढूंढ़ें।

क्योंकि जो व्यक्ति अपनी कमियों को पहचान लेता है, वह उन्हें सुधारने की दिशा में भी कदम बढ़ा सकता है; और यही सुधार आगे चलकर सफलता का आधार बनता है।

हर विचार के, हर चीज के दो अर्थ निकल सकते हैं। और यह हमारी दृष्टि तथा हमारी मनोदशा पर निर्भर करता है कि हम सही अर्थ को चुनते हैं या गलत अर्थ को।

जैसे, गलतियां हमेशा नकारात्मकता से नहीं जुड़ी होतीं। कभी-कभी वे अत्यंत ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही होती हैं। हम जैसे-जैसे सफलता की सीढ़ियों को चढ़ते जाते हैं, वैसे-वैसे गिरने का डर बढ़ता जाता है, और हमें उतना ही जागृत तथा सतर्क रहना पड़ता है।

एक बार एक व्यक्ति भागते-भागते एक संत की कुटिया में पहुंचा। वह काफी घबराया हुआ था। उसे किसी बात को लेकर झूठे आरोप लगाकर फंसाया जा रहा था। वास्तव में वह निर्दोष था।

उसने संत से कहा, "मेरे पीछे राजकर्मी पड़े हैं। मुझे ढूंढ़ रहे हैं। कृपया मुझे छुपा लीजिए।"

संत ने भी उसकी आंखों में सत्य देखा और कहा, "जाओ, चारे के पीछे छुप जाओ।"

थोड़ी देर में राजकर्मी आए। उन्होंने संत से प्रश्न किया, "क्या किसी व्यक्ति को यहां से भागते हुए देखा है?"

संत ने कह दिया, "हां, जो वह व्यक्ति है, चारे के पीछे छिपा हुआ है।"

चारे के पीछे छुपे व्यक्ति ने सोचा, "अब तो और बुरा फंसा। अगर ऐसे ही फंसाना था, तो मुझे इन संत ने छुपाया ही क्यों?"

सैनिकों ने आपस में कहा, "संत बुजुर्ग हो गए हैं। पहले तो छुपाते हैं और किसी के पूछने पर ऐसे कोई बताता है क्या? चलो, हम यहां पर वक्त जाया नहीं करते। आगे चलते हैं, नहीं तो वह और आगे निकल जाएगा।"

यह सोचकर राजकर्मी वहां से निकल गए।

बाहर आकर उस व्यक्ति ने संत को धन्यवाद दिया और पूछा, "आपने ऐसा क्यों कहा? आपने राजकर्मियों को बता क्यों दिया कि मैं चारे के पीछे छुपा हूं?"

तब संत ने कहा, "मैं अपने अनुभव से कह रहा हूं कि सत्य से किसी का बुरा नहीं होता, और इसीलिए मुझे सत्य पर भरोसा था। अंततः सत्य सदैव सत्यवान की रक्षा करता है।"

सत्यवादी बनना एक बात है और सत्यवान बनना दूसरी बात।

सत्य को हमें केवल वचनों तक सीमित नहीं रखना है। सत्य तो हमारे दैनिक व्यवहार में झलकना चाहिए।

इसी प्रकार, अपने द्वारा हुई गलतियों को यदि हम मान-अपमान के बारे में बिना विचार किए स्वीकार करते हैं, तो हम सत्यवादी से सत्यवान बनने की ओर बढ़ेंगे; नैतिकतावादी से नैतिकवान बनेंगे; क्रियावादी से क्रियावान बनेंगे; सिद्धांतवादी से सिद्धांतवान बनेंगे।

अंततः इन सारी खूबियों के हम केवल वकील नहीं, केवल उनकी बातें करने वाले नहीं, बल्कि उन्हें जीने वाले भी बनेंगे।

इस प्रकार, गलतियों को पहचानना ही काफी नहीं है; उन्हें पहचानकर उन पर सुधार करना भी बेहद आवश्यक है।

आप इतिहास उठाकर देख लीजिए। जिन भी राजा-महाराजाओं, शासकों का आज तक विनाश हुआ है, तो केवल इसलिए क्योंकि वे पूरी दुनिया को अपने आगे झुकाना चाहते थे।

युगों पहले रावण का उदाहरण ले लीजिए, या कुछ सदियों पहले नेपोलियन बोनापार्ट का उदाहरण ले लीजिए, या एडॉल्फ हिटलर का उदाहरण ले लीजिए। आज की समस्याओं में से मुझे जो सबसे बड़ी समस्या लगती है, वह यह है कि हम अपने मन के विरुद्ध जरा-सा भी विपरीत कुछ नहीं सुनना चाहते।

यहां तक कि हमारे शिक्षक, हमारे अध्यापक भी अगर हमें कुछ समझाना चाहें और हमारी गलतियां निकाल रहे हों, तो बजाय इसके कि हम नम्रता से

उनकी बात को गंभीरता से लें, उल्टा हम उस व्यक्ति से घृणा करने लगते हैं, उससे नफरत करने लगते हैं।

हमेशा सोचिए कि हम कहां आ चुके हैं, और किस दिशा में आगे बढ़ रहे हैं; कि कोई अगर भलाई के लिए भी हमारी खामियां बताए, तो उसे स्वीकार करना तो दूर, हमें उसके मुंह से निकली एक-एक बात जहर लगने लगती है।

हमें सुनना पड़ेगा। स्वीकार करने की बात हो, तो स्वीकार भी करना पड़ेगा; क्योंकि हम अभी अध्ययन की अवस्था में हैं।

हम अक्सर लुका-छुपी खेलते हैं। अपनी गलतियों को छुपाकर रखते हैं और दूसरों की गलतियों को खोजते हैं।

होता क्या है कि हम जो ढूंढते हैं, अक्सर हमें केवल वही मिलता है। जैसे मान लीजिए, आपको एक मोबाइल खरीदना है, तो आप किसी से भी मिलेंगे, तो पूछेंगे, "अरे, कौन सा फोन अच्छा है? तुम्हारे पास कौन सा है? कहां से अच्छा फोन मिलेगा?" आदि कई सारे प्रश्न आप केवल मोबाइल से संबंधित पूछेंगे।

कुछ भी अगर गूगल पर सर्च करेंगे, तो वहां भी मोबाइल से रिलेटेड कुछ सर्च करेंगे, जैसे— "बेस्ट मोबाइल अंडर 25000", "सबसे अच्छे कैमरे वाला फोन"।

यहां तक कि अगर आप कहीं रास्ते पर से जा रहे हो और आपको कोई होर्डिंग दिख जाए, जिसमें लिखा हो, "बिग सेल का इलेक्ट्रॉनिक", तो तुरंत आप उस होर्डिंग में मोबाइल को ढूंढने लगेंगे। उस रास्ते पर कपड़ों की होर्डिंग होगी, सीमेंट की, गाड़ियों की और कई तरह के होर्डिंग्स होंगे, लेकिन आपका ध्यान केवल इलेक्ट्रॉनिक्स वाले होर्डिंग पर जाएगा।

ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि हमारा दिमाग हमें उसी चीज की तरफ आकर्षित करता है, जिन्हें हम पाना चाहते हैं। हमारा दिमाग, हमारा मन, हमारी पूरी मदद करते हैं उन चीजों को पाने के लिए, जो हम असल में पाना चाहते हैं, जिन चीजों को पाने के लिए हम बेहद बेताब और प्रतिबद्ध हैं।

हमें हमेशा परफेक्ट बनने का प्रयास करना चाहिए। गलतियों पर सफाई देना बुद्धिमत्ता नहीं है। वजह इसके, अपनी गलतियों को, अपनी कमियों को स्वीकार करना बुद्धिमत्ता है।

हम सोचते हैं कि हम अपनी गलतियां मानेंगे, तो हमारी इमेज खराब हो जाएगी, रेपुटेशन खराब हो जाएगी, लोगों के बीच हमारा नाम खराब हो जाएगा। नहीं, बल्कि ऐसा भी तो हो सकता है कि हमारे गलती स्वीकार करने पर लोग यह कहें कि, "देखो, कितना विनम्र है। इतना गलती होने पर भी विनम्रता से स्वीकार कर रहा है।"

ऐसा सोचेंगे, तो जिन बातों से हमें डर लग रहा था, वह डर हमारे मन से निकल जाएगा और हम आसानी से अपनी गलतियों को स्वीकार कर सकेंगे और अपने अंदर सुधार ला सकेंगे।

जिस दिन हम किसी मुकाम को हासिल कर लेंगे, और वास्तव में लगेगा कि अब किसी के मार्गदर्शन की आवश्यकता नहीं, हम स्वयं इतने सक्षम हो गए हैं कि अपना मार्गदर्शन स्वयं कर सकें, उस दिन हम सोचें कि हमें और कोई गलतियां न बताए।

लेकिन जब तक सीखना बाकी है, तब तक अपनी कमियों को सुनने और उन्हें सुधारने की विनम्रता बनाए रखना ही बुद्धिमानी है।

जो लोग हमें हमारी गलतियां बता रहे हों, ऐसा भी तो हो सकता है कि उनके बोलने के पीछे कोई गहरी सीख छुपी हो।

हमें उस कड़वाहट के पीछे छुपी सीख को समझने की जरूरत है। हर गलती बताने वाले को अपना शत्रु न समझें, अपितु मित्र समझें।

यदि हम अपने शुभचिंतकों और मित्रों की बात पर अमल करेंगे, तो दिन-प्रतिदिन हमारी ही छवि निखरेगी और हमारा व्यक्तित्व भी बेहतर होता जाएगा।

6.
दो भाई दोनों तबाही

बोलना और सुनना — ये दो विषय लगते जितने सहज और आसान हैं, उतने ही गहरे एवं कठिन हैं।

मैंने बोलने और सुनने, दोनों के प्रभाव को स्वयं महसूस किया है।

सही बोलने से, सही वचनों का और सही शब्दों का प्रयोग करने से, बड़े से बड़ा कार्य स्वतः ही हो जाता है।

सही शब्दों का चयन कोई परिपक्व व्यक्ति ही कर सकता है। यह परिपक्वता की निशानी है।

हमारे शब्दों में, हमारी भाषा में, हमारे व्यक्तित्व की और हमारी संस्कृति की झलक दिखती है।

हमारे शब्द ही हमारे व्यवहार का सर्टिफिकेट होते हैं, हमारे व्यवहार का प्रमाण-पत्र होते हैं।

शब्द ऐसे होने चाहिए कि हृदय को छू जाएं, और वाणी ऐसी होनी चाहिए जो अपनी छाप छोड़ जाए।

"If you can speak, you can influence; and if you can influence, you can change lives."

बोलना तो हमें शायद दो-तीन साल की उम्र से ही आ गया होगा, या कुछ को तो और भी पहले; लेकिन **कब, क्या, कैसे, कितना और क्यों बोलना है**, यह शायद अब तक हम न सीख पाए हों।

सही बोलने के लिए पहले सही तरह से सुनना आना चाहिए।

और आज तो कोई किसी की सुनने को तैयार ही नहीं। सब वक्ता हैं, श्रोता कोई नहीं। बोलने वाले तो सब हैं, पर सुनने वाला कोई नहीं। जिस प्रकार

सही वचनों से कार्य स्वतः हो जाते हैं, उसी प्रकार गलत वचनों से बना-बनाया काम भी बिगड़ जाता है।

ज्ञानी महापुरुष कहते हैं कि जहां **"बोलूं या न बोलूं?"** यह विचार मन में आए, वहां नहीं बोलना ही बेहतर होता है।

सड़क किनारे अपने बोर्ड पर लिखी एक पंक्ति अवश्य पढ़ी होगी —

"दुर्घटना से देर भली।"

अगर इस वाक्य को इस विषय पर भी लागू कर सकें, अर्थात कुछ गलत बोलने से यदि कोई गड़बड़ी हो रही हो, या कोई ऐसी घटना घट सकती हो जो नहीं होनी चाहिए, तो उस समय मौन रहना ही सही निर्णय होता है।

ऐसे समय में एक बार पुनः विचार करें कि क्या बोलूं। थोड़ा रुक जाएं, स्थिति को समझें, और फिर कुछ समय बाद अपने भाव व्यक्त करें।

पहले कोई भी बात हमारे मन में आती है, फिर वचनों में, और उसके बाद क्रिया में आती है।

इस प्रकार वचन, हमारे मन और हमारी क्रिया — दोनों के बीच एक पुल की तरह काम करते हैं।

तो सोचिए, अगर यह पुल बिगड़ गया, खराब हो गया, तो मन की बात आचरण में कैसे आएगी? और अगर आ भी गई, तो किस रूप में और कितने सही प्रकार से आचरण में आ सकेगी?

एक बार हमारे स्कूल में लड़कों के बीच लड़ाई हो गई। एक लड़के ने दूसरे लड़के को कुछ ऐसा-वैसा कह दिया, तो दूसरे लड़के ने पहले को थप्पड़ मार दिया। झगड़ा बढ़ गया और टीचर को आना पड़ा।

टीचर ने दूसरे लड़के को अपने पास बुलाया और पूछा, "क्या बात है? उसे क्यों मार रहे हो?"

तो उसने जवाब दिया, "उसने मुझे ऐसा-ऐसा बोला।"

मैं भी वहीं खड़ा होकर टीचर की बात सुन रहा था। टीचर ने जो कहा, उसे आपको भी बड़े ध्यान से सुनना चाहिए।

उन्होंने कहा, "तुम रास्ते पर चल रहे हो, तो सड़क के किनारे अगर कुत्ते तुम पर भौंकने लगें, तो तुम क्या करोगे? क्या तुम भी उनके साथ भौंकने लग जाओगे?"

बात जरा-सी है, लेकिन बड़ी गहराई वाली है।

आखिर हमें फिजूल की बातों को सुनकर या उन पर प्रतिक्रिया देकर अपना समय और ऊर्जा व्यर्थ ही क्यों गंवानी है?

पहले कोई भी बात हमारे मन में आती है, फिर वचनों में, और उसके बाद क्रिया में आती है।

इस प्रकार वचन, हमारे मन और हमारी क्रिया — दोनों के बीच एक पुल की तरह काम करते हैं।

तो सोचिए, अगर यह पुल बिगड़ गया, खराब हो गया, तो मन की बात आचरण में कैसे आएगी? और अगर आ भी गई, तो किस रूप में और कितने सही प्रकार से आचरण में आ सकेगी?

कहां है —

"जीवन हो पवित्र, जगत हो मित्र, जिह्वा पर हो अमृत।"

हमें सुनने की क्षमता को बढ़ाना चाहिए और बोलने की क्षमता को घटाना चाहिए; क्योंकि एक कटु शब्द बोला नहीं कि दिल आहत हो जाता है, और एक मधुर शब्द बोला नहीं कि दिल बाग-बाग हो जाता है।

जो छोटी-छोटी-सी बात पर भड़क उठते हैं, और जो बड़बोले बनकर जरूरत से ज्यादा कह देते हैं, दोनों की कीमत कम हो जाती है।

हम कम बोलेंगे, तो लोग स्वयं होकर हमसे बात करेंगे। और जब संक्षिप्त, सीमित शब्दों में हम अपनी बात कहेंगे, तो लोग बड़े ध्यान से हमारी बात सुनेंगे।

वे सोचेंगे कि, "यह तो बहुत कम बोलता है, जरूरत होने पर ही बोलता है; तो अवश्य ही आज कोई महत्वपूर्ण बात रही होगी, इसलिए यह कह रहा है।"

कम बोलने से कीमत कम नहीं होती।

कभी ध्यान दीजिएगा किसी नेता के चुनावी भाषण पर। सभा में उपस्थित जनता कितने ध्यान से सुनती है? दूसरों की छोड़िए, क्या हमने कभी किसी नेता की बात, किसी खास घोषणा को छोड़कर, पूरी तन्मयता से सुनी होगी?

शायद 95% समय हम ध्यान से नहीं सुनते।

ऐसा क्यों? वह तो बड़ा पदाधिकारी है, सरकार में मंत्री है, पैसे वाला है, और उसके पास कितने अधिकार हैं; फिर भी लोग ध्यान से क्यों नहीं सुनना चाहते?

क्योंकि वे इतना बोलते हैं कि बोल-बोलकर अपने वचनों की कीमत खोने लगते हैं।

पहला कारण तो यह है कि वे बहुत लंबे-चौड़े भाषण देते हैं, और दूसरा यह कि उनकी बातों में अक्सर सच्चाई की कमी होती है। उनकी बातें अधिकतर प्रामाणिक नहीं होतीं। बिना काम के, एक ही बात को घुमा-फिराकर एक-दो घंटे तक बोलते रहने से, या ऊंची आवाज में कहते रहने से, हमारी बात अनमोल नहीं बन जाती।

वाणी का मूल्य उसके शब्दों की संख्या में नहीं, बल्कि उसके **सत्य, सार और प्रभाव** में होता है।

हम चाहे जो बोलें, मीठा बोलें।

कम बोलने का अर्थ यह कतई नहीं है कि हम अपने भाव सामने वाले के समक्ष रख ही न पाएं। अपितु, कम बोलने का अर्थ होता है कि हम उतना बोलें, जितना सामने वाला सुनना चाहे।

हमें ऐसा प्रयास करना चाहिए कि हम उसे इस ढंग से न कहें जैसा हम कहना चाहते हैं, बल्कि उसे इस ढंग से कहें जैसा सामने वाला सुनना चाहता हो।

कहते हैं —

"हरी कैरी का आम हो जाएगा,
जो मीठा बोलेगा, उसकी हर काम हो जाएगा।"

मधुर वाणी केवल शब्दों का सौंदर्य नहीं होती, बल्कि वह हृदय तक पहुंचने का मार्ग भी बनाती है।

कटु वचन जहां दूरियां बढ़ाते हैं, वहीं मीठे और संयमित शब्द संबंधों को मजबूत बनाते हैं, मन जीतते हैं और कठिन से कठिन कार्य को भी सरल बना देते हैं।

एक बार एक राजा को अपने भविष्य के बारे में जानने की तीव्र इच्छा हुई। उसने कई भविष्यवक्ताओं को एक-एक करके दरबार में बुलाया और सबसे अपना भविष्य जानने लगा।

एक ज्योतिषी से राजा ने अपने घर-परिवार के भविष्य के बारे में पूछा। ज्योतिषी विद्वान था। उसने कुंडली निकाली, कुछ गुणा-भाग किया और निष्कर्ष निकाला कि, "महाराज, आपकी ग्रह-दशा तो बड़ी विषम है। आपके देखते-ही-देखते, आपके सामने आपका सारा परिवार खत्म हो जाएगा।"

जैसे ही राजा ने यह बात सुनी, वह गुस्से से लाल-पीला हो गया और कहने लगा, "कैसा झूठा आदमी है! कुछ भी बकता है।"

ऊपर से उसने सैनिकों को आदेश दे दिया, "इसे पंद्रह-बीस कोड़े मारो और एक सप्ताह के लिए कारावास में डाल दो।"

कारागृह के रास्ते में पहले ज्योतिषी को एक दूसरा ज्योतिषी मिला। उसने दूसरे को पहले ही सचेत कर दिया कि, "भाई, राजा को सत्य मत बताना। सत्य सुनकर राजा ऐसी दशा कर देता है।"

दूसरे ज्योतिषी ने कुछ सोचा और राजा के पास चला गया।

राजा ने उससे भी अपना भविष्य पूछा। ज्योतिषी ने भी अपना गुणा-भाग किया और बोला, "वाह महाराज! आपकी कितनी अच्छी कुंडली है। इन सब में से आप सबसे ज्यादा भाग्यशाली हैं। आपकी उम्र तो सबसे लंबी है।"

यह बात सुनते ही राजा का गुस्सा काफूर हो गया और वह प्रसन्न होकर सैनिकों को आदेश देने लगा, "इन्हें पुरस्कृत करो और इनका सम्मान करके इनके घर छोड़कर आओ।"

दोनों ही ज्योतिषियों का भावार्थ एक ही था, पर केवल और केवल कहने का तरीका अलग-अलग था।

इसीलिए एक पर राजा प्रसन्न हुआ और दूसरे पर क्रोधित।

एक ने मधुर वचनों का प्रयोग किया, जबकि दूसरे ने बड़े ही कठोर वचनों का प्रयोग किया।

एक के शब्दों ने राजा की मनःस्थिति को विचलित कर दिया, जबकि दूसरे के शब्दों ने राजा की मनःस्थिति को संतुष्ट कर दिया और उसके दिल-दिमाग को प्रसन्न कर दिया।

इस प्रकार समझा जा सकता है कि हमारे कहने के ढंग की कितनी अहमियत होती है। अक्सर लोग यह नहीं देखते कि आपने क्या कहा, बल्कि यह अधिक महसूस करते हैं कि आपने कैसे कहा।

वही बात, वही संदेश, वही सत्य — यदि उचित शब्दों, मधुर वाणी और संवेदनशीलता के साथ कहा जाए, तो उसे सहजता से स्वीकार कर लिया जाता है; लेकिन यदि वही बात कटुता, कठोरता या असभ्यता के साथ कही जाए, तो वह विरोध और नाराजगी का कारण बन जाती है।

इसलिए केवल सत्य बोलना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि सत्य को सही समय पर, सही शब्दों में और सही ढंग से कहना भी उतना ही आवश्यक है। शब्दों का, लहजे का और कहने के तरीके का अपना-अपना बहुत गहरा प्रभाव होता है।

जीवन में खुशी का एक बुनियादी, आधारभूत रास्ता यह है कि जो बोलो, उसे दिल से बोलने की कोशिश करो; और जो बात दूसरों के दिल में है, उसे समझने की कोशिश करो।

बोलना महत्वपूर्ण नहीं है, और कौन बोल रहा है, वह भी उतना महत्वपूर्ण नहीं है; महत्वपूर्ण यह है कि क्या बोला जा रहा है। हमारे वचन हमारी पहचान होते हैं। वे हमारी परिपक्वता दर्शाते हैं और हमारी विचारधारा को प्रदर्शित करते हैं।

कहते हैं कि बेहतरीन इंसान अपनी जुबान और व्यवहार से जाना जाता है।

शब्दों में अलग ही जादू होता है। वे हंसते हुए को रुला सकते हैं और रोते हुए को हंसा सकते हैं; सोते हुए को जगा सकते हैं और जागते हुए को सुला भी सकते हैं; गिरते हुए को बचा सकते हैं; लड़ते हुए को मिला सकते हैं और साथियों को लड़ा भी सकते हैं।

और ऐसी अद्भुत कला हमें प्राप्त है, केवल उसका सही उपयोग करना आना चाहिए।

वचन तो संसार की सबसे शक्तिशाली वस्तु हैं; क्योंकि किसी के अंतःकरण को बदलने की शक्ति केवल वचनों के पास है, शब्दों के पास है।

कहते हैं —

"शब्दों में अगर क्रोध की भाषा है, तो यह महाभारत की परिभाषा है।"

शब्द गरम नहीं, नरम होने चाहिए।

हमारे वचनों में गहरा विचार झलकना चाहिए।

"Speaking comes by nature, and silence by understanding."

अर्थात बोलना प्रकृति से आता है, लेकिन कब मौन रहना है और कब बोलना है, यह समझ से आता है।

Silence... यह बहुत कठिन है।

मेरे नजरिए से शांति भी दो तरह की होती है।

एक शांति तो वह है, जो मजबूरी से आती है। कहीं-न-कहीं किसी के दबाव से, या किसी अवसाद की वजह से; किसी से कुछ बोलने का मन नहीं है, इसलिए व्यक्ति चुप है।

और दूसरी शांति, दूसरी चुप्पी वह है, जो समझ से आती है। व्यक्ति यह समझता है कि यहां बोलने से कोई फायदा है या नहीं, या यहां कुछ भी कहना सही होगा या नहीं; ऐसी समझदारी की वजह से वह चुप है।

पहली वाली **Silence** हमें भारी बनाए रखती है। अंदर-ही-अंदर हमें संकुचित करती है।

वहीं दूसरी प्रकार की **Silence** हमें हल्का रखती है, हमें शांत रखती है। ऐसी चुप्पी हमारे भीतर सुकून, खुशी और संगीत की तरह गूंजती है।

पहली प्रकार की **Silence** वाले लोग कहना तो बहुत कुछ चाहते हैं, बहुत कुछ अभिव्यक्त करना चाहते हैं, पर कर नहीं पाते। कारण कुछ भी हो

सकता है — किसी भी तरह का दबाव, किसी प्रकार की हिचकिचाहट, किसी प्रकार की घबराहट या कोई अन्य भय।

और जहां-जहां ये सारी आहटें रहेंगी, वे हमें भारी ही बनाकर रखेंगी।

वहीं दूसरी प्रकार की **Silence** वाले व्यक्ति अपने शब्दों में बेहद सीमित होते हैं, पर अपने अर्थ में बेहद विस्तृत होते हैं।

क्योंकि वे शब्दों में सीमित होते हैं, इसलिए कम उलझते हैं।

अक्सर शब्दों की असीमितता ही उलझन का कारण बनने लगती है।

जबकि समझ से उपजा हुआ मौन व्यक्ति को भीतर से स्थिर, संतुलित और स्पष्ट बनाता है।

ऐसी चुप्पी कमजोरी नहीं होती, बल्कि परिपक्वता की निशानी होती है।

हम जब भी शब्दों का प्रयोग करें, तब अपने शब्दों की गुणवत्ता का बेहद ध्यान रखें।

हम सोचें कि इस दुनिया में कितने लोग ऐसे हैं, जो बोल नहीं पाते; जिनके पास उनकी आवाज तक नहीं है। पर हमारे पास तो यह क्षमता है, इसलिए इसका बहुत ही समझदारी से इस्तेमाल करें।

जाहिर-सी बात है, सभी आदर और सम्मान की भाषा ही सुनना पसंद करते हैं। जब हम सुनने के लिए आदर-भाव के अभिलाषी हैं, तो कहने के समय वह आदर-भाव न जाने कहां चला जाता है।

शायद बहुत कम बार ऐसा होता होगा कि हमारा एक वाक्य भी बिना किसी अपशब्द, बिना किसी गाली के निकलता हो।

बहुत आवश्यक है कि हम अपने आप में सोचने और समझने का प्रयास करें कि कौन-से शब्द, कैसे शब्द, कहां पर और किस तरह से बोलने चाहिए; और हम वास्तव में कहां, किस तरह से बोलते हैं।

क्योंकि वचन एक ऐसी चीज है, जिसे सीखने की अलग से जरूरत नहीं पड़ती। कोई छोटा बच्चा होता है, वह अपने आसपास के लोगों को सुन-सुनकर, समय आने पर बोलने लगता है।

जिस क्षेत्र में जिस तरह का लहजा होता है, वह उसी लहजे में ढल जाता है।

अतः हम जिन शब्दों का, जैसी बोली का उपयोग करेंगे, वह खुद-ब-खुद आने वाली पीढ़ी को स्थानांतरित हो जाएगा।

हम भी आज जो कुछ कहते हैं, वह हमने कहीं-न-कहीं सुन रखा होगा; इसलिए आज हम वैसा कहते हैं। इसी प्रकार, हमसे भी कुछ लोग सीखेंगे।

और किसी भी कार्य का प्रभाव तब बढ़ जाता है, जब किसी सभ्य व्यक्ति को वह करते हुए देखा जाए।

अगर हम सभ्य परिवारों से होते हुए भी असभ्य भाषा का प्रयोग करेंगे, तब तो हम सभ्यता की परिभाषा को ही बदल देंगे; क्योंकि हमारी क्रियाएं और हमारा आचरण ही हमारी पहचान तथा परिभाषा बन जाते हैं।

हमें अपने वास्तविक गुणों को जानने की, और एक बार फिर उन्हें दोहराने की बहुत आवश्यकता है।

किसी फिल्म में, खेल में, किसी हीरो को या किसी खिलाड़ी को ऐसी भाषा का उपयोग करते देखकर हम उसे बहुत कूल समझने लगते हैं। हम निम्न स्तर के शब्दों का प्रयोग कर अपने आप को बहुत आधुनिक और आकर्षक समझने लगते हैं। न जाने हमारी बुद्धि कहां खो-सी गई है।

केवल यही नहीं, हम तो ऐसी वाणी का उपयोग कर ही रहे हैं; किंतु जो लोग ऐसा नहीं करते, या हमें समझाते हैं कि हमें ऐसी भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए, हम उन्हें ही उल्टा मूर्ख समझते हैं, आउटडेटेड समझते हैं, पुराने जमाने का मान लेते हैं।

वास्तव में, शायद हमने गोबर को सोना मान लिया है और हीरे को मात्र एक मामूली कांच का टुकड़ा।

शायद जो करने योग्य है, वह नहीं कर रहे; और जो नहीं करने योग्य है, वही कर रहे हैं।

पर इतना सब होने पर भी एक बूंद मात्र का अफसोस या पछतावा हमें नहीं होता।

इसीलिए हमें अपने गुणों को दोहराने की बेहद आवश्यकता है।

अपने Value Points के पुनरावलोकन (Revision) की बहुत आवश्यकता है।

क्योंकि व्यक्ति का वास्तविक मूल्य उसके शब्दों, उसके व्यवहार और उसके संस्कारों से ही पहचाना जाता है।

कहते हैं, व्यक्ति दो प्रकार से सोचता है — **दिल से और दिमाग से।** और दोनों ही अपनी-अपनी जगह आवश्यक हैं।

हम केवल सोचते ही नहीं, बोलते भी दो प्रकार से हैं — **दिल से और दिमाग से।**

कई बार हम अपनी भावनाओं की उपेक्षा कर केवल दिमाग लगाने लगते हैं। तब हमारे दिल की कोमलता कठोरता में बदल जाती है।

कहते हैं, **"दीवारों में दरार आती है, तो दीवार टूट जाया करती है; पर अगर दिल में दरार आ जाए, तो दीवारें खड़ी हो जाती हैं।"**

हमारे अंदर कोमलता, मृदुता, करुणा और सहनशीलता जैसे अत्यंत आवश्यक गुणों की कमी होती जा रही है।

हमारी आदत हो गई है कि हर समय कुछ नया ट्राई करें। लेकिन कुछ नया ट्राई करने के चक्कर में हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जीवन के सर्टिफिकेट पर, जीवन के प्रमाण-पत्र पर, पुण्यवाणी के प्रमाण-पत्र पर और हमारी अच्छाइयों की मार्कशीट पर **"फेल"** न लिखा जाए।

कहीं ऐसा न हो कि **कूल** बनने के चक्कर में हम **फूल** बन जाएं, या आधुनिक बनने की दौड़ में हमारी अंतरात्मा, हमारी शुद्धता और हमारी सभ्यता की मृत्यु हो जाए।

नवीनता को अपनाना अच्छी बात है, लेकिन अपनी संस्कृति, अपने संस्कार और अपने मूल्यों की कीमत पर नहीं।

वास्तव में, प्रगति वही है जो हमें आधुनिक भी बनाए और मानवीय भी बनाए; जो हमें आगे भी ले जाए और भीतर से बेहतर भी बनाए।

अगर थोड़ा-सा चिंतन करेंगे, तो समझ आएगा कि हमारे वचन, हमारी भाषा और हमारी वाणी कहीं-न-कहीं हमारी अशांति और हमारी शांति — दोनों का कारण बन जाती हैं।

क्योंकि अक्सर हम अपने बड़बोलेपन में कुछ-का-कुछ कह देते हैं। और फिर खाली समय में हमें अपनी ही कही हुई बातें याद आती हैं, और उनका अफसोस होने लगता है।

"अरे, मैंने उसे ऐसा क्यों कहा?"
"मैंने वहां वैसा क्यों कह दिया?"
"कहीं मैंने ज्यादा तो नहीं बोल दिया?"
"अरे, ऐसा नहीं बोलना था। शायद ऐसे बोलता तो काम बन जाता।"
"अगर मैंने वैसे शब्दों का प्रयोग नहीं किया होता, तो बात इतनी नहीं बिगड़ती।"
"उसने मुझे ऐसा कैसे बोल दिया?"
"अगर उसने मुझे ऐसा बोला था, तो मुझे भी उसके उत्तर में उसे ऐसा-वैसा बोलना चाहिए था।"
"अगर आज मैं उसके सामने ऐसा बोल देता, तो उसकी बोलती बंद हो जाती।"

इत्यादि अनेक प्रकार के अनगिनत विचार हमारे दिमाग में चलने लगते हैं।

बोलना था या नहीं बोलना था, यह बात तो बीत चुकी होती है; मगर हम भविष्य की काल्पनिक परिस्थितियां बनाकर सोचने लगते हैं कि, "अगर भविष्य में उसने मुझे ऐसा बोला, तो मैं भी यह-यह बोल दूंगा।"

और इस प्रकार हमारे भीतर पूरी एक फिल्म चलने लगती है।

पहली गलती तो यह होती है कि जो हो चुका है, उसके बारे में हम इतना अधिक सोचते रहते हैं कि, "ऐसा नहीं होना चाहिए था।"

और दूसरी गलती यह होती है कि यदि हम कुछ गलत बोल देने के बाद इतना सोचने पर मजबूर हो रहे हैं, तो यही सारे विचार बोलते समय क्यों नहीं किए?

अगर उसी समय इतने विचार कर लिए होते, तो आज अफसोस नहीं हो रहा होता।

इसलिए बोलने से पहले थोड़ा ठहरना, थोड़ा सोचना और फिर शब्दों का चयन करना अत्यंत आवश्यक है।

क्योंकि एक बार निकले हुए शब्द वापस नहीं आते, लेकिन उनका प्रभाव बहुत लंबे समय तक हमारे मन और दूसरों के हृदय में बना रह सकता है।

आरंभ भी महत्वपूर्ण है और अंत भी।

उदाहरण के लिए, किसी फिल्म की शुरुआत जितनी शानदार होती है, उसका अंत भी उतना ही जानदार होना चाहिए। अर्थात् आरंभ और समापन, दोनों की ही अपनी-अपनी महत्ता होती है। दोनों ही महत्वपूर्ण हैं।

ठीक इसी तरह, हमारा बोलना जितना महत्वपूर्ण है, हमारा चुप रहना भी उतना ही महत्व रखता है। हमारी शांति, हमारी **Silence**, भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

यदि किसी फिल्म की शुरुआत तो अच्छी रही, लेकिन क्लाइमेक्स में, अंत में कुछ खास नहीं रहा, तो उसका प्रभाव अधूरा रह जाता है। उसी प्रकार, हम कहने में तो बहुत अच्छे हों, बेहद काबिलियत रखते हों, शब्दों पर अच्छी पकड़ भी रखते हों; किंतु हमें कब रुकना है, यह न मालूम हो, तो अच्छा वक्ता होने पर भी हमें उसका पूरा लाभ नहीं मिलता।

कहते हैं —

“A good speaker is first a good listener.”

हमें सोचना चाहिए कि हमारे शब्द जितने गहरे हैं, क्या हमारी समझ और हमारी **Silence** भी उतनी ही गहरी है?

क्योंकि जब हमें कुछ बोलना होता है, तो विचार जिस गति से निकलते हैं, उससे दोगुनी, तिगुनी, शायद चौगुनी रफ्तार से हम मन-ही-मन सोचने और विचार करने लगते हैं।

अर्थात, हम शांत रहकर कहीं अधिक प्रभावी ढंग से चिंतन कर सकते हैं और अपनी समझ को एक नई दिशा दे सकते हैं।

कहते हैं कि यदि दो व्यक्ति बहस कर रहे हैं, तो आवश्यक नहीं कि एक सही और एक गलत हो; कई बार दोनों ही गलत होते हैं। क्योंकि यदि वे वास्तव में समझदार होते, तो उचित समय पर चुप हो जाते।

यह समझदारी कहां से आती है?

यह समझदारी आती है चिंतन से, सही सोच से; और यह सब शांत रहने पर ही संभव है।

हमें विचार करना चाहिए कि क्या हमारी **Silence** इतनी शक्तिशाली है, या हमने अपनी चुप्पी को कहीं दूर कर रखा है?

हमारी **Silence** भी ऐसी होनी चाहिए कि हमारी चुप्पी भी बोलने लगे।

"Our silence should also speak."

मान लीजिए कि मुझे कुछ कहना है। एक मिनट में मैं कितने वाक्य बोल सकता हूं? कितने मनोभाव व्यक्त कर सकता हूं? पचास पंक्तियां, सौ पंक्तियां?

पर यदि मुझे एक मिनट तक केवल सोचने का समय दिया जाए, तो न जाने कितने विचार, कितने दृष्टिकोण और कितनी तरह से एक ही बात पर चिंतन किया जा सकता है।

बोलने से कहीं अधिक प्रभावी क्रिया है — **सोचना।**

और यदि उसके सही उपयोग की समझ आ जाए, तो हम अपनी **Silence** को भी वक्तृत्व का गुण दे सकते हैं।

आवश्यकता है गहनता की, लगन की और आत्मचिंतन की।

ये सारे गुण तब बढ़ने लगते हैं, जब हमारे शब्द कम और उनके अर्थ अधिक विस्तृत होते हैं।

जब हम शब्दों में सीमित होते हैं, तो आचरण में असाधारण होते हैं।

और हमेशा से ही बोलने वालों की अपेक्षा करने वालों की अहमियत अधिक रही है।

हम जितना चुप रहेंगे, शांत रहेंगे और मौन रहेंगे, उतना ही अपने अंतरमन की आवाज को सुन पाएंगे।

क्योंकि जब हम बोलते हैं, तो सबसे पहले सुनना बंद कर देते हैं।

और हमारे भीतर की वही आवाज हमें कुछ अलग, कुछ विशिष्ट, कुछ बाकियों से भिन्न करने की प्रेरणा देती है।

दुर्भाग्य से, हम उसी आवाज को सुनना बंद कर देते हैं।

पहली बात तो यह हुई कि हमारी बोली में मृदुता हो, मिठास हो।

और दूसरी बात यह कि हमारी बातें स्पष्ट हों, अर्थात् **To the Point** हों।

ऐसा न हो कि यहां कुछ और बोलें और वहां कुछ और।

अतः याद रखिए —

सत्यता + स्पष्टता = प्रामाणिकता।

इसी विषय पर मैंने एक बार एक कहानी सुनी थी।

एक बार की बात है। जंगल के राजा शेर को एक शंका हुई और अपने प्रश्न का उत्तर पाने के लिए वह जंगल में घूमने लगा।

तभी उसे एक बंदर मिला। शेर ने उससे पूछा, "सुनो, क्या मुझसे दुर्गंध आती है?"

बंदर ने एक मिनट तक सोचा और बोला, "अरे, बिल्कुल नहीं महाराज! आपसे तो उल्टा इतनी सुगंध आती है कि क्या बताऊं। आप जब चलते हो, तो आसपास का वातावरण इस कदर महकने लगता है, जैसे फूलों का बगीचा हो।"

शेर समझ गया कि यह मेरी झूठी तारीफ करके मुझे चने के झाड़ पर चढ़ा रहा है। इसी बहाने यह मेरा मजाक उड़ा रहा है।

शेर को बड़ा गुस्सा आया और उसने बंदर को मार डाला।

फिर शेर को एक हिरण मिला।

शेर ने उससे भी वही सवाल किया, "क्या मुझे दुर्गंध आती है?"

तब हिरण ने कहा, "महाराज, झूठ नहीं बोलूंगा। सही बताऊं तो आपसे इतनी खतरनाक बदबू आती है कि आपके आसपास कोई खड़ा नहीं रह सकता। कोई आपके पास आना नहीं चाहता। न जाने कितनी दूर-दूर तक आपकी बदबू फैलती रहती है।"

शेर सच्चाई सहन नहीं कर सका और उसने उस हिरण को भी मार डाला।

अब शेर एक लोमड़ी के पास आया और पूछा, "क्यों रे लोमड़ी, क्या मुझे दुर्गंध आती है?"

लोमड़ी वैसे ही अपनी चालाकी के लिए प्रसिद्ध थी। उसने पहले दो जानवरों की हालत देख रखी थी। अब वह जरा-सी असमंजस की स्थिति में पड़ गई कि सच कहे या झूठ।

तब लोमड़ी ने अपनी मुंडी जरा-सी इधर-उधर हिलाई, दो-चार बार सूंघने का अभिनय किया और फिर कहा, "महाराज, पिछले कुछ दिनों से मेरी नाक बंद है। मुझे तो किसी भी चीज की गंध ही नहीं आ रही।"

यह बात सुनकर शेर वहां से चला गया।

इस पूरी घटना का सार यही है कि कभी-कभी झूठ और सच, दोनों ही मुसीबत खड़ी कर सकते हैं। ऐसे समय में मौन रहना, अर्थात् चुप रहना, ही समझदारी होती है।

समय, स्थिति और परिणामों का जरा-सा ध्यान रखकर बोला जाए — या न बोला जाए — इसकी थोड़ी तहकीकात करके बोला जाए, तो गड़बड़ होने की संभावनाएं कम हो जाती हैं।

साथ ही, हमें Silence की उस शक्ति के बारे में भी समझ आता है, जिसे लोग कभी-कभी "ना हरी में, ना बरी में" वाली स्थिति कहते हैं; अर्थात् अनावश्यक विवाद में पड़े बिना स्वयं को संतुलित रखना।

क्या आपने कभी गौर किया है कि हमारी जीभ कितनी चंचल होती है? किसी भी स्वादिष्ट खाने को देखकर किस तरह लपलपाने लगती है, मचलने लगती है। और कोई बात सुनते ही अपनी प्रतिक्रिया देने के लिए भी किस तरह बेचैन हो उठती है।

इसी जीभ को अपने अनुसार, अपने मन के मुताबिक नियंत्रित करना अत्यंत कठिन होता है।

तो जरा मन बनाएं कि, भले ही कठिन हो, हम अपने वचनों का बड़ी समझदारी, बुद्धिमानी और चतुराई से प्रयोग करेंगे।

कब, कहां, कितना और कैसे बोलना है — यह समझकर ही शब्दों का उपयोग करेंगे।

और गलत बोलने या आवश्यकता से अधिक बोलने के कारण जो बाद में पछतावा होता है, उससे बचने का भी प्रयास करेंगे।

क्योंकि कई बार एक क्षण का मौन, घंटों की बहस से अधिक प्रभावशाली होता है; और कई बार एक सोच-समझकर बोला गया वाक्य, जीवनभर याद रखा जाता है।